अक्षय कुमार जैन

जय गोमटेश्वर

जगद्-प्रसिद्ध गोमटेश्वर की मूर्ति के
सहस्राब्दि समारोह पर प्रकाशित

हिन्दी बुक सेण्टर, नई दिल्ली-११०००२
द्वारा प्रसारित

अक्षय कुमार जैन

JAIN, AKSHAYA KUMAR
JAI GOMTESHWAR
(History of Jain Statute)
STAR, NEW DELHI, 1979
Rs. 8.00

एकमात्र वितरक :
हिन्दी बुक सेण्टर
४/५, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक : स्टार पब्लिकेशन्ज ([illegible])
१६४१ दरीबा कलाँ, दिल्ली-११०००६

प्रथम संस्करण : १९७९

मूल्य : आठ रुपये

मुद्रक : नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-३२

समर्पण

गोमटेश्वर के सहस्राब्दि महोत्सव के
सुअवसर पर यह पुस्तक उस अद्वितीय
मूर्ति के अज्ञात महान कलाकार
महाशिल्पी अरिष्टनेमि को समर्पित,
जिसने बाहुबलि स्वामी की
धवल कीर्ति की सुगन्ध
देश देशान्तर में फैलाई
और भारतीय शिल्प
को शाश्वतता
प्रदान की

प्राक्कथन

वर्ष १६७६ में श्रद्धेय एलाचार्य मुनि विद्यानन्दजी के आशीर्वाद तथा जैनमठ के आदरणीय भट्टारक स्वामी चारुकीर्ति जी की प्रेरणा से श्रवणबेलगोल, कराकल, धर्म-स्थल, हुम्चा आदि कर्नाटक के अनेक तीर्थ एवं सुन्दर स्थलों पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। अपनी दो सप्ताह की इस यात्रा में मुझे ऐसा लगा कि इन स्थानों पर जाने का अवसर बहुत पहले मिलना चाहिए था और वहां अब तक कई बार हो आना चाहिए था किन्तु जब अवसर आया तभी यह सम्भव हो सका।

उस यात्रा में भट्टारक स्वामीजी के सानिध्य का अच्छा सुयोग रहा। उन्होंने जैनबद्री, मूड़बद्री, धर्म-स्थल, हुम्चा आदि स्थानों पर लिखी हुई अपनी एक पाण्डुलिपि मुझे दी जो प्रस्तुत पुस्तक की प्राण है। सच पूछा जाय तो यह पुस्तक भट्टारक स्वामीजी की ही पुस्तक कही जाय तो अत्युक्ति न होगी क्योंकि इसमें अधिकांश सामग्री उनके ही द्वारा प्रदत्त है।

एलाचार्य मुनि विद्यानन्दजी के आशीर्वाद से ही यह पुस्तक प्रकाश में आ रही है। उन्होंने कृपाकर आशीर्वाद के कुछ शब्द भी लिखने का कष्ट किया है, इसके लिए मैं उनका अनुगृहीत हूं।

भट्टारक स्वामीजी के प्रति मैं क्या आभार प्रदर्शन करूं। यह पुस्तक ही उन्हीं की है। उपरोक्त दोनों महापुरुषों ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि देखने का कष्ट किया है, इसके लिए भी मैं अत्यन्त आभारी हूं।

वर्ष १९८१ के प्रारम्भिक मास में ही गोमटेश्वर की उस संसार प्रसिद्ध ऐतिहासिक मूर्ति के निर्माण को एक हजार वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। उस अवसर पर लाखों यात्री दर्शनार्थ श्रवणबेलगोल पहुंचेंगे। उनकी सूचना एवं उस स्थल, मूर्ति तथा उससे सम्बन्धित अनेक महापुरुषों की जानकारी इस पुस्तक में है। इसके अलावा पास-पड़ोस के स्थान, कर्नाटक राज्य के प्रमुख धार्मिक एवं दर्शनीय स्थलों का संक्षिप्त विवरण भी इस पुस्तक में इस दृष्टि से दिया गया है कि जैन और जैनेतर बन्धुओं को इन स्थलों को देखने के लिए आकर्षित एवं प्रेरित कर सकें। पुस्तक के अन्त में पूजा भी दे दी गई है ताकि पुस्तक की उपादेयता बढ़ जाय।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक पाठकों को रुचिकर लगेगी।

—अक्षय कुमार जैन

१५-३-१९७९
सी-४७, गुलमोहर पार्क
नई दिल्ली

आशीर्वाद

आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली उदात्त, मनस्वी और आदर्श महापुरुष थे । उनका जीवन अत्यन्त पावन और विलक्षणताओं से परिपूर्ण था । उन्होंने अपने अधिकार की रक्षा के लिए अपने अग्रज भरत से युद्ध करना स्वीकार किया, युद्ध किया तो अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अपने अग्रज की मान मर्यादा की रक्षा की, युद्ध में विजय प्राप्त करके सम्पूर्ण भरत क्षेत्र की राज्यलक्ष्मी का परित्याग करके निरीह भाव से तप करने वनों में चले दिये, तप किया तो एक वर्ष तक एक ही स्थान पर एकाग्र खड़े रहकर । दीमकों ने इस अचल योगी के ऊपर बाम्बी बना ली, उसमें सर्पों ने आकर अपना निवास बना लिया, माधवी लताओं ने प्रसार पाकर उनके अंगों को आवेष्टित कर लिया, पक्षियों ने उनमें अपने नीड़ बना लिए । सुर सुन्दरियां आकर बेलें हटा जातीं, गन्धर्व बालायें चारों ओर सफाई कर जातीं । किन्तु कामदेव जैसे रूप वाले बाहुबली एक निष्ठ साधना में निरत रहे और काम, क्रोध, मोह पर विजय पाकर आत्म-सिद्धि प्राप्त की । इस युग में सर्व प्रथम उन्होंने ही परिनिर्वाण प्राप्त किया था । चक्रवर्ती भरत

उनकी मूर्ति का निर्माण कराया । बाहुबली की यह प्रथम मूर्ति थी ।

गंगनरेश के प्रतापी सेनापति वीरमार्तण्ड चामुण्डराय अविजित विजेता थे । वे वीर तो थे ही, प्रसिद्ध विद्वान भी थे और विद्वानों एवं कलाकारों के आश्रयदाता भी थे । माता के निमित से श्रवणबेलगोल में गोमटेश्वर बाहुबली की तपस्यारत दशा की जो प्रतिमा उन्होंने बनवाई, वह कला, सौन्दर्य और भावाभिव्यंजना की दृष्टि से अप्रतिम है । बाहुबली के चरित के समान इसकी निर्माण कथा भी अद्‌भुत और रोचक है । आगामी अप्रैल सन् १६८१ में इस मूर्ति को निर्मित हुए एक हजार वर्ष पूरे हो रहे हैं ।

श्री अक्षयकुमार जी विख्यात पत्रकार और लेखक हैं । उनका अध्ययन और अनुभव विशाल है । उन्होंने बाहुबली और इस विश्व-विश्रुत गोम्मटेश्वर-मूर्ति के सम्बन्ध में प्रामाणिक आधारों और अनु-श्रुतियों का समुचित उपयोग करके सुबोध भाषा में आवश्यक ज्ञातव्य प्रस्तुत किया है, उसका महत्व श्रवणबेलगोल में होने वाले सहस्राब्दी महोत्सव के परिप्रेक्ष्य में और भी अधिक बढ़ जाता है । इससे जन सामान्य को बाहुबली और उनकी कलापूर्ण मूर्ति का पूरा परिचय प्राप्त हो सकेगा । श्री अक्षयकुमार जी का यह प्रयास स्तुत्य है । उन्हें हमारा आशीर्वाद है ।

दिल्ली

— विद्यानन्द मुनि
(एलाचार्य)

जय गोमटेश्वर

अच्छाय-सच्छं जलकंत-गंडं ।
आबाहु दोलंत सुकण्णपासं ।।
गइंद सुंडुज्जल बाहुदंडं ।
तं गोमटेसं पणमामि णिच्चं ।।

नर-नारी अपना मुख-मण्डल दर्पण में देख कर प्रसन्न होते है । इन्द्रगिरि पर्वतमाला अपनी शोभा और छवि कल्याणी सरोवर (जो इन्द्र और चन्द्रगिरि पर्वतों के बीच में है) में देखकर प्रसन्न होती है। अब प्रश्न है कल्याणी सरोवर अपना प्रतिबिम्ब कहां देखे ? तो वह देखता है गोमटेश्वर की मनोज्ञ मूर्ति के कपोलों में।

यह है एक प्राकृत कवि की गोमटेश्वर की मूर्ति की छवि के संबंध में मधुर कल्पना ।

जम्बू द्वीप, आर्यावर्त, अथवा भारतवर्ष आध्यात्मिक जगत में चिरकाल से सुप्रसिद्ध रहा है । सम्भवतः उसका कारण है यहां के नगर, गांव और पर्वतीय प्रदेशों में बड़े-बड़े मन्दिर, मठ, स्तूप और कलापूर्ण भव्य विशालकाय मूर्तियों का निर्माण होना जिनका दर्शन आज भी होता है और जो देश, विदेश के लोगों को अपनी ओर

निरन्तर आकर्षित करते रहते हैं।

उत्तर भारत में आततायियों के आक्रमणों के कारण और गरम राजनीति की उहापोह की वजह से प्राचीन मन्दिर आदि प्रायः खंडित और नष्ट-भ्रष्ट हो गये। मथुरा, काशी, अयोध्या तथा शिखरजी आदि स्थानों की प्राचीन उपलब्धियों को छोड़ दें तो अन्य स्थानों पर ऐसे चिह्न नहीं मिलते जिन्हें बहुत प्राचीन कहा जा सके। तीर्थंकर महावीर और तथागत बुद्ध के काल के खण्डहरों को छोड़ दें तो उत्तर भारत में प्राचीनता प्रकट करनेवाले शायद ही चिह्न शेष हों। किन्तु दक्षिण भारत में विशेषकर कर्नाटक राज्य में प्राचीन मन्दिर, मठ और मूर्तियां आदि आज भी प्राचीन कला की समृद्धि, सभ्यता और संस्कृति के दर्शन कराती है। कर्नाटक में ही एक छोटा-सा गांव है जो अब धीरे-धीरे नगर का रूप लेता जा रहा है-- जैनबद्री श्रवण बेलगोल।

जैन बद्री -- कर्नाटक राज्य के हासन जिले से ५० किलो मीटर, चेन्नराय पट्टन से १२ किलो मीटर, बैंगलूर से १६० किलो मीटर, और मैसूर से ६० किलो मीटर है। यह जैनों का अत्यन्त प्राचीन तीर्थ है। उत्तर भारत में इसे जैनबद्री, बाहुबली, गोमटेश्वर कहते हैं लेकिन दक्षिण भारत में यह श्रवण-बेलगोल नाम से सुप्रसिद्ध है।

श्रवण-बेलगोल कन्नड़ भाषा का शब्द है। मूल में यह 'श्रमण बिलिकोला' था जो कालान्तर में बोलते-बोलते श्रवण-बेलगोल बन गया। जैन साधुओं को श्रवण कहा जाता है। (श्राम्यन्ति बाह्या-भ्यन्तरतपश्चरन्तीति श्रमणाः) कन्नड भाषा में 'बिलि' का अर्थ होता है श्वेत और कोल का अर्थ है सरोवर। इसलिए श्रवण-बेलगोल का अर्थ है 'जैन साधुओं का श्वेत सरोवर'। इससे प्रकट है कि प्राचीन काल से यह स्थल जैन साधुओं की तपोभूमि रही है। यहां पर जो कल्याणी सरोवर है, आज भी उसका स्वरूप प्राचीनता का प्रतीक यथावत बना

हुआ है। कहा जाता है, किसी समय यह सरोवर निश्चय ही उस क्षेत्र का अत्यन्त आकर्षक स्थान था। इस नगर की जनसंख्या ४-५ हजार है। इसके उत्तर में चन्द्रगिरि और दक्षिण में विन्ध्यागिरि अथवा इन्द्रगिरि नाम की दो पहाड़ियां हैं। इन दोनों के मध्य यह भाग्यशाली गांव बसा हुआ है।

विन्ध्यगिरि समुद्र तल से ३३४७ फुट और आसपास के मदान से ४७० फुट ऊंचा है। इस पर भगवान गोम्मटेश्वर-बाहुबली की विशालकाय कलात्मक ५७ फुट ऊंची विश्व विख्यात अखण्ड शिला की खड्गासन प्रतिमा विराजमान है।

प्राचीनता

जनश्रुति तो यह है कि दक्षिण भारत में वनवास के काल में मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र यहां पधारे थे और उन्होंने बाहुबलि की एक रत्न प्रतिमा यहां स्थापित की थी किन्तु आज रामायण काल की प्रतिष्ठित उस प्रतिमा का कहीं पता नहीं है। यह प्रागैतिहासिक जनश्रुति है।

किन्तु इतिहास बताता है कि जैनों के २४वें तीर्थंकर भगवान महावीर के परिनिर्वाण के लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद मगध देश में अन्तिम श्रुतकेवली स्वामी भद्रबाहु मुनीन्द्र विराजमान थे। कहा जाता है कि अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु बंगाल के रहने वाले थे किन्तु सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के आचार्य होने के कारण पाटलीपुत्र में आकर रह रहे थे। उस समय इतिहास प्रसिद्ध मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त उज्जयिनी में राज्य करते थे। (ई० पू० २९६ से ३२१ तक) वे छह मास पाटलीपुत्र और छह मास उज्जयिनी में रहा करते थे।

इन स्वामी भद्रबाहु के जैन साधु बनने की बड़ी रोचक कथा

है । बंगाल के कोकटपुर ग्राम में जैनों के चतुर्थ श्रुतकेवली आचार्य गोवर्धन जा रहे थे कि उन्होंने दो बच्चों को कांच की गोलियों से खेलते देखा । उनमें से एक बालक १४ गोलियों को जिस तन्मयता से एक-दूसरे पर रख रहा था, उसकी ध्यानमग्नता देखकर आचार्य गोवर्धन बड़े प्रभावित हुए और उन्हें यह भास गया कि वह बालक बहुत ही तेजस्वी है । वे उसके साथ उसके घर पहुंचे, जहां उसकी माता ने यह समझकर कि साधु संभवत: आहार के लिये निकले हैं, उन्हें पड़गाहा । पर आचार्य जी ने उस बच्चे की प्रशंसा की और उसे मांगा । माता बहुत प्रसन्न हुई किन्तु पिता सोमशर्मा उस समय वहां नहीं थे । जब वह आये तो बालक को लेकर मुनिजी की सेवा में पहुंचे और कहा कि यह बालक आपका सान्निध्य प्राप्त करे, हमारे और इस बच्चे के लिये इससे अधिक सौभाग्य की बात क्या होगी ? आचार्य महोदय ने एक अन्तिम परीक्षा उस बच्चे की ली । एक शस्त्र और एक शास्त्र एक ही स्थान पर रख दिये और बालक को उसमें से एक को ले लेने के लिए कहा । बालक ने शास्त्र ले लिया । उसके बाद आचार्य ने उस बालक को दीक्षा दी और भद्रबाहु नाम दिया । एक मान्यता के अनु-सार दूसरा बालक भद्रबाहु का सहोदर था जो बाद में अद्वितीय ज्योतिषी वराहमिहिर के नाम से विश्व-विख्यात हुआ ।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन में एक आध्यात्मिक मोड़ उस समय आया जब नगर में अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु का पदार्पण हुआ । चन्द्रगुप्त आचार्य की वन्दना को गये । धर्मोपदेश सुना और उसके उपरान्त आत्मतत्त्व और निर्वाण के मार्ग को प्राप्त करने के साधनों पर विचार करते रहे ।

तभी दो विचित्र घटनाएं हुईं । एक चन्द्रगुप्त के साथ, दूसरी आचार्य भद्रबाहु के साथ । दोनों घटनाओं का अभिप्राय और फल एक

ही है।

एक कार्तिक पूर्णिमा की रात चन्द्रगुप्त वात पित, कफ आदि रोगों रहित स्वस्थ अवस्था में सोये हुए थे कि रात्रि के पिछले पहर में उन्होंने १६ स्वप्न देखे। जिनका परिणाम सुखद नहीं प्रतीत हुआ। सोलह स्वप्न थे—१. सूर्यास्त, २. कल्पवृक्ष की शाखा का टूटना, ३. चन्द्रमा का उदय जिसमें छलनी की तरह छेद थे, ४. भयंकर सर्प जिसके बारह फण थे, ५. देवताओं का विमान जो नीचे उतर कर वापस चला गया, ६. मलिन स्थान में उत्पन्न कमल, ७. भूतप्रेतों का नृत्य, ८. जुगुनुओं का प्रकाश, ९. जल रहित सरोवर किन्तु कहीं-कहीं थोड़ा-सा जल, १०. सोने की थाली में खीर खाता हुआ कुत्ता। ११. ऊँचे हाथी पर बैठा हुआ बन्दर, १२. तट की मर्यादा भंग करता हुआ समुद्र, १३. रथ को खींचते हुए बछड़े, १४. ऊँट पर चढ़ा हुआ राजपुत्र, १५. धूल में आच्छादित रत्नराशि, १६. काले हाथियों का युद्ध।

सुबह चन्द्रगुप्त ने आचार्य भद्रबाहु को जाकर प्रणाम किया : अपने स्वप्न सुनाये और प्रार्थना की कि इन स्वप्नों का फल बताने की कृपा करें। आचार्य भद्रबाहु बोले—यह स्वप्न अच्छे नहीं। ये सूचित करते हैं कि भविष्य खोटा होगा किन्तु इसी स्थिति का चिन्तन अच्छे पुरुषों में वैराग्य उत्पन्न करेगा। प्रत्येक स्वप्न का फल इस प्रकार है—

१. डूबते हुए सूरज का अर्थ है—कि पंचम काल में श्रुतज्ञान अस्त होता चला जायेगा।

२. कल्पवृक्ष की शाखा का टूटने का अर्थ है कि आगे से राजपुरुष संयम का ग्रहण नहीं करेंगे।

३. चन्द्रमण्डल में अनेक छेदों का अर्थ यह है कि धर्म के शुद्ध मार्ग पर दूसरे वादी-प्रतिवादी मतों का प्रादुर्भाव होगा।

४. बारह फण वाले सर्प का अर्थ यह है कि १२ वर्ष तक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा।

५. उल्टे जाते हुए विमान का अर्थ है कि पंचम काल में देवता, विद्याधर और चारण मुनि पृथ्वी पर नहीं आयेंगे।

६. अशुचि स्थान में कमल का अर्थ है कि उत्तम कुल के लोग धर्म धारण नहीं करेंगे।

७. भूतों के नृत्य का अर्थ है कि लोग भूत प्रेतों में विश्वास करेंगे।

८. जुगनुओं के चमकने का अर्थ है कि धर्म के प्रकाश से रहित व्यक्ति ही उपदेशक होंगे।

९. सूखा सरोवर किन्तु कहीं-कहीं जल सहित का अर्थ है कि भगवान की वाणी का तीर्थ प्रायः सूख जायेगा किन्तु दक्षिण आदि देशों में कहीं-कहीं जैन धर्म दिखाई देगा।

१०. सोने की थाली में खीर खाते हुए कुत्ते का अर्थ है कि नीच पुरुष लक्ष्मी का उपयोग करेंगे। कुलीन पुरुषों को यह प्राप्त नहीं होगी।

११. ऊँचे हाथी पर बैठे हुए बन्दर का अर्थ है कि राजशासन ऐसे लोगों के हाथ में आ सकता है जो चंचल मति हों।

१२. समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर रहा है, इसका अर्थ है कि शासक प्रजा की लक्ष्मी का हरण करेंगे और न्याय मार्ग का उल्लंघन करेंगे।

१३. रथ को वहन करने वाले बछड़ों का अर्थ है कि यौवन की अवस्था में लोग संयम ग्रहण करने की शक्ति रखेंगे किन्तु वृद्धावस्था में यह शक्ति क्षीण हो जायेगी।

१४. ऊँट पर चढ़े हुए राजपुत्र का अर्थ है कि राजा लोग निर्मल धर्म छोड़कर हिंसा का मार्ग अपनायेंगे।

१५. धूल से आच्छादित रत्नराशि का अर्थ है कि निर्ग्रन्थ साधु भी एक-दूसरे की निन्दा करने लगेंगे।

१६. काले हाथियों का युद्ध यह व्यक्त करता है कि मेघ आशानुकूल वर्षा नहीं करेंगे।

चन्द्रगुप्त इन स्वप्नों का फल सुनकर चिन्तित हुए किन्तु तभी आचार्य की यह बात उनके मन में कौंधी कि यह स्थिति इस बात का भी संकेत है कि मनुष्य संयम धारण करें और वैराग्य की ओर ध्यान लगायें।

दूसरी घटना यह हुई। उसकी कथा इस प्रकार है : एक बार जब आचार्य भद्रबाहु नगर में आहार के लिये निकले थे और एक घर में प्रवेश किया तो उसे बिल्कुल सुनसान पाया। केवल एक कोने में एक पालने में बालक लेटा हुआ था। आचार्य देखकर चकित हुए यहां यह अकेला बालक कैसे ? तभी बालक ने कहा 'जाओ, जाओ।' आचार्य भद्रबाहु ने निमित्त ज्ञान से विचार किया कि बालक की बात का अर्थ है यह क्षेत्र छोड़ना चाहिए। उन्होंने सोचा जब यह बालक बोल रहा है तो इससे प्रश्न भी किया जा सकता है। प्रश्न का उत्तर मिला, १२ वर्ष और निमित्त ज्ञान से अर्थ झलका कि बारह वर्षों का भीषण अकाल पड़ेगा।

भद्रबाहु का यह निमित्त ज्ञान और चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न इतने सार्थक थे कि आचार्य भद्रबाहु ने तत्काल निर्णय किया कि वे मालव प्रान्त और उत्तर भारत को छोड़ दक्षिण की ओर प्रयाण करेंगे।

भद्रबाहु स्वामी ने यह समझकर कि अकाल के कारण मुनिचर्या का निर्विघ्न पालन होना असम्भव हो जायेगा, अपने १२००० शिष्यों सहित दक्षिण भारत की ओर विहार किया। इस घटना से सम्राट्

चन्द्रगुप्त को भी वैराग्य हो गया। उन्होंने आचार्य भद्रबाहु से मुनि दीक्षा ले ली और वह भी आचार्य के संघ में सम्मिलित होकर दक्षिण की ओर चल पड़े। आचार्य भद्रबाहु का मुनिसंघ दक्षिण की ओर मंगल-विहार करते-करते श्रवण बेलगोल पहुंचा और कटवप्र पर्वत पर जो आजकल के चन्द्रगिरि नामक पर्वत के निकट है ठहरा। वहां एक सात्विक शान्त वातावरण, पर्वत पर निवास योग्य सुन्दर गुफाएं, समाधि योग्य विशाल शिलाएं, सुमधुर पक्व फलों से लदे वृक्ष, कल-कल बहता जल और चारों ओर प्राकृतिक रमणीय तपोवनों से भरी दिशाएं — सभी ने भद्रबाहु स्वामी को वहां रोक लिया। देवदुर्लभ उस पवित्र भूमि को साधुओं के रहने योग्य समझकर अपने शिष्यों सहित वे वहीं चन्द्रगिरि पर्वत पर ठहर गये। श्रवण बेलगोल के अन्य नाम है —धवलतीर्थ, जैन बद्री, दक्षिणकाशी, बाहुबलीजी, गोमटेश्वरजी।

सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने धार्मिक गुरु श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ जब मगध छोड़कर दक्षिण की ओर चले तो उन्होंने अपने पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात को ईसा से २९८ वर्ष पूर्व पाटलीपुत्र के सिंहासन पर बैठाया और सर्वोच्चर चाणक्य को उसकी देख-रेख के लिए नियुक्त कर दिया। उस समय चाणक्य ७७ वर्ष के थे। जैन ग्रन्थों में चाणक्य के सम्बन्ध में काफी सामग्री प्राप्त है।

तीर्थंकर महावीर के निर्वाण के ९२ वर्ष बाद ईसा से ४३५ वर्ष पूर्व आचार्य चाणक्य का जन्म हुआ था। चणय नामक ग्राम में ब्राह्मण कुल के श्रमण आस्थावान् इनके पिता चणक और माता चणेश्वरी कहलाती थी। चणक के पुत्र होने के कारण ये चाणक्य कहलाये। इनके जन्म ग्राम चणय के सम्बन्ध में जो जनश्रुतियां प्राप्त होती है, उनमें एक यह है कि यह पाटलीपुत्र के निकट कुसुमपुर के आसपास था, और दूसरा यह कि वह तक्षशिला के निकट था। जो

भी हो, कहा जाता है कि चाणक्य के जन्म के समय उसके मुंह में पूरे दांत थे। यह देखकर सभी को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। किसी जैन साधु ने तब चणक से कहा था कि यह शक्तिशाली नरेश होगा। किन्तु रूढ़िवादी वातावरण में पले चणक ने अपने पुत्र के दांत निकलवा दिये। तब उस जैन साधु ने यह कहा बताते है कि अब वह स्वयं राजा तो न होगा किन्तु किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से राज्य शक्ति का उपयोग और संचालन करेगा। बड़े होने पर चाणक्य ने छह अंगों का विद्याभ्यास किया, और ब्राह्मणवृति के अनुरूप अत्यन्त साधारण रूप से जीवनयापन करने लगा। कहते हैं, एक बार उसकी पत्नी अपने भाई के विवाह में शरीक होने के लिए मायके गई। वहां उसके भाइयों-भाभियों तथा अन्य सम्बन्धियों ने उसकी गरीबी की हँसी उड़ायी जिससे उसे बहुत दुःख हुआ। और जब स्वाभिमानी चाणक्य ने यह सुना तो उसे बड़ी ग्लानि हुई और धनोपार्जन एवं शक्ति अर्जन की ओर उसका मन हुआ।

महाराज महापद्म नन्द के सम्बंध में कहा जाता था कि वह विद्वानों का बड़ा आदर करता था। चाणक्य उसकी प्रशंसा सुनकर पाटलीपुत्र पहुंचे, और राजसभा में सभी को शास्त्रार्थ में पराजित कर महाराज के दान-विभाग के अध्यक्ष का पद प्राप्त कर लिया। किन्तु चाणक्य की कुरूपता और अभिमानी स्वभाव के कारण युवराज सिद्धपुत्र हिरण्य गुप्त ने कुछ बात परिहास में कह दी उससे रुष्ट होकर उग्रस्वभावी चाणक्य शाप देता हुआ राज्य सेवा छोड़ गया। चलते-चलते वह नन्द साम्राज्य के अन्तर्गत पिप्पलीवन के मोरी गणतंत्र में जा पहुंचा। वहां श्रमणोपासक क्षत्रियों का प्राधान्य था। वहां के मुखिया मौर्यवंशी सरदार की इकलौती पुत्री गर्भवती थी उसे दोहला हुआ कि चन्द्र पान करे। चाणक्य ने चतुराई से एक पात्र में दूध भर

कर चन्द्रमा की छाया दिखला दी और उस दूध का पान करा दिया। कुछ समय बाद उस पुत्री ने पुत्र को जन्म दिया। इसी कारण उस शिशु का नाम चन्द्रगुप्त रखा गया। बाद को चाणक्य ने इसी चन्द्रगुप्त को शिक्षा दी और उसे अपनी राजनीति कुशलता से पाटलीपुत्र का राज्य नन्दों से जीतकर दिलाया।

एक दिन श्रुतकेवली भद्रबाहु मुनीश्वर ने अपने निमित्त ज्ञान से अपना अन्तिम काल निकट जान समाधिमरण लेने का निश्चय किया। उन्होंने अपने सभी शिष्यों को चोल, पांड्य आदि निकट के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में धर्मोपदेश के लिए भेज दिया। केवल—चन्द्रगुप्त जिनका मुनि नाम विशाखाचार्य था उनकी गुरु-भक्ति के लिए साथ रह गये। भगवान महावीर के निर्वाण के १६२ वर्ष और एक अन्य मान्यता के अनुसार १७० वर्ष बाद स्वामी भद्रबाहु का समाधिमरण हुआ। आचार्य की समाधि होने के बाद मुनि विशाखाचार्य ने १२ वर्ष तक उस चन्द्रगिरि पर्वत पर अपने गुरु स्वामी भद्रबाहु की समाधि के निकट रहकर कठोर तपस्या की और तब अपना अन्त काल जान उन्होंने भी समाधिमरण लिया। सम्राट् चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध रखने के कारण ही इस पर्वत का नाम चन्द्रगिरि पड़ गया। इसका वर्णन यहां के अनेक शिलालेखों में उत्कीर्ण है।

निश्चय ही यह भूमि अति पावन है। यह स्थल प्राचीन स्थापत्य कला तथा पवित्र गौरव गाथा के साथ जैनों के भूतकालीन गौरव और भारत के स्थापत्य एवं मूर्ति कला के सुवर्ण युग की याद दिलाता है। मन्दिरों की अधिक संख्या और उनके अपूर्व सौन्दर्य के कारण तथा प्रमाणों की अधिकता से यह तीर्थ अन्यों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली बन गया है। यहां पर सल्लेखना व्रत लेकर समाधिमरण करनेवाले त्यागियों की संख्या सैकड़ों हजारों में बतलायी जाती है। ५५५

ऐसे शिलालेख मिलते हैं जिनमें इन सभी तथ्यों का उल्लेख है। इनके अलावा और न जाने कितने शिलालेख काल के गाल में समा गये। श्रवण बेलगोल गांव के आसपास ५० किलोमीटर की दूरी तक प्राचीन कन्नड़ भाषा के सैकड़ों शिलालेख बिखरे पड़े हैं जिनमें अतीत युग का जैन इतिहास उत्कीर्ण पड़ा है। मैसूर विश्वविद्यालय ने प्रमुख शिलालेखों का संकलन किया है।[1]

श्रवण बेलगोल अति प्राचीन काल से तीर्थ-यात्रियों के लिए तो आकर्षण बना ही रहा है, विद्याधाम के लिए भी इसकी प्रसिद्धि रही है। शायद इसीलिए इसे जैनकाशी भी कहा जाता है। यहां के जैन आचार्यों की परम्परा दूर-दूर तक प्रसिद्ध रही है। पट्टाचार्य भट्टारकों ने जहां बड़े-बड़े राजा महाराजाओं से सम्मान प्राप्त किया है, वहां उन्हें जैन दर्शन की ओर आकर्षित भी किया। जहां त्यागी, वैरागी, राजा-महाराजा, रानी-महारानी, राजकुमार-राजकुमारी, सेनापति, मंत्री-महामंत्री तो आये ही, दीन-दुखी भी धर्माराधना के लिए आये, उन्होंने आत्म-कल्याणार्थ सल्लेखना (समाधिमरण) व्रत भी धारण किया। जिस प्रकार (हिन्दुओं में) काशी-वास में मरना मुक्ति का मार्ग माना जाता है, उसी प्रकार प्राचीन काल में कटवप्र पर्वत पर (चन्द्रगिरि) समाधिमरण करना पुण्य-कृत्य समझा जाता रहा है। हिन्दुओं में काशी, रामेश्वरम्, ईसाईयों में यरूशलम, बैतुलहम, मुसलमानों में मक्का-मदीना का जो महत्व है, वही जैन धर्मावलम्बियों का इस क्षेत्र के प्रति समादर भाव है।

श्रवण बेलगोल अथवा जैनबद्री इस बात का प्रमाण है कि जैनों का शासन राष्ट्र के लिए कितना हितकर था और उनके सम्राट किस प्रकार का धर्म-राज्य स्थापित करते थे। यहां का दर्शन प्रत्येक

1. एपिग्राफिया कर्नाटका, भाग २

व्यक्ति के हृदय में आत्म-गौरव का भाव जागृत कर देता है।

इस क्षेत्र के ज्ञात इतिहास में श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु स्वामी से लेकर आगे तक अनेक महान् आचार्य हो चुके हैं जो यहां रहकर अहिंसा धर्म की सांगोपांग व्याख्या किया करते थे। आचार शास्त्र को क्रियारूप देकर जड़वाद पर आत्मवाद की विजय दिखाया करते थे। वे महान आचार्य मृत्यु से अमरत्व की ओर, अनेकता से एकता की ओर, जड़ से चेतन की ओर और अपूर्णता से पूर्णता की ओर जाने का मार्ग दिखाया करते थे।

निस्संदेह जैन तीर्थों के इतिहास में सम्मेद शिखर को छोड़कर यह जैनबद्री ही ऐसा तीर्थ है जो सैकड़ों, हजारों वर्षों से जैन-शिक्षा संस्कृति और सभ्यता का जागृत केन्द्र रहा है, यहां की इंच-इंच भूमि सैकड़ों मुनियों की तपोभूमि रही है।

इस स्थान पर महान् आचार्यों ने धर्म, व्याकरण, न्याय आदि सभी विषयों पर अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। यहीं रहकर आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने द्रव्यसंग्रह, गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार और क्षपणासार आदि महान् ग्रन्थरत्नों की रचना की। यहां के आचार्यों ने दक्षिण के होयसल, गंग, राष्ट्रकूट, चोल और पांड्य आदि राजाओं को भी अपनी वाणी से प्रभावित कर जैन-धर्म की दीक्षा दी। वास्तव में जैन धर्म के मूल रूप की रक्षा का गौरव इसी तीर्थ क्षेत्र को प्राप्त है।

अभिनव भट्टारक चारुकीर्ति पंडिताचार्यवर्य

जैनबद्री की आचार्य परम्परा में सभी भट्टारक चारुकीर्ति पंडिताचार्य कहलाते रहे हैं। विगत सैकड़ों वर्षों में लगभग १०० भट्टारक इसी नाम के हो चुके हैं वर्तमान भट्टारक स्वामीजी को भी

इसी नाम से सम्बोधित किया जाता है। भट्टारक परम्परा के अनुसार अभिनव भट्टारक स्वस्ति श्री चारूकीर्ति पंडिताचार्य स्वामीजी के द्वारा आज भी यहां शास्त्र प्रवचन, अध्ययन-अध्यापन, प्रकाशन, विद्वजजनों का सम्मान और शिक्षण आदि कार्य बराबर चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त श्री गोम्मटेश्वर विद्यापीठ में छात्रों को निःशुल्क धार्मिक-शिक्षण, भोजन और आवास की व्यवस्था भी है। गत वर्षों में भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के संदर्भ में दक्षिण भारत के धर्मचक्र का विहार जैनबद्री से ही प्रारम्भ हुआ था और यहीं उसका समापन भी हुआ। भट्टारक स्वामीजी ने ही अध्यक्ष पद से इसका सुचारु रूप से संचालन किया था।

वर्तमान भट्टारकजी की देख-रेख में समस्त कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेशों में सफलतापूर्वक मंगल-विहार करते और पावापुरी से लौटे धर्म-चक्र की इसी क्षेत्र में प्रतिष्ठा हो चुकी है। भट्टारकजी धर्म, व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रों तथा कन्नड़, हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं के ज्ञाता हैं और अपने पूर्ववर्ती सभी भट्टारकों में सबसे कम आयु के हैं। दिगम्बर जैन मैनेजिंग कमेटी, जैनबद्री के आप ही अध्यक्ष हैं। क्षेत्र की अभिवृद्धि और उत्तरोत्तर विकास के लिए आप प्रयत्नशील हैं। आपके सतत प्रयासों से आधुनिक सुख-सुविधाओं की यहां कई धर्मशालाएं बन चुकी हैं। शाकाहारी केन्टीन का निर्माण हो चुका है और पर्वत पर जल और विद्युत व्यवस्था भी हो चुकी है।

इस प्रकार जैनबद्री कला, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि का सुरक्षित भंडार तो है ही, साथ में आजकल देश-विदेश से आनेवाले पर्यटकों का प्रमुख दर्शनीय स्थल भी बन गया है।

विन्ध्यगिरि

विन्ध्यगिरि को यहां की जनता 'इन्द्रगिरि' भी कहती है और उसका कन्नड़ नाम—"दोड्ड बेट्ट" भी है। "दोड्ड" का अर्थ होता है—'बड़ा 'और 'बेट्ट' पहाड़ को कहते हैं। इस प्रकार इसका अर्थ हुआ --'बड़ी पहाड़ी'। विन्ध्यगिरि समुद्र तल से ३३४७ फुट ऊंचा है और आसपास के मैदान में ४७० फुट। यानी यह स्थान सामान्य रूप से ऊंचाई पर है और विन्ध्यगिरि उससे भी काफी ऊंचा है। यह ग्रेनाइट ठोस पत्थर (चिकने ग्रेनाइट) का पहाड़ है। नीचे यह घेरदार है और ऊपर चढ़ते-चढ़ते क्रमशः छोटा होता चला गया है और सबसे ऊपर पहुंच कर इसका रूप गोल गुम्बद जैसा हो गया है। दूर से देखने में ऐसा लगता है मानो प्रकृति ने इसे सुन्दर, सजीला बनाकर छतरी तान दी है।

विन्ध्यगिरि शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार है—विन् = आत्मा, ध्या-ध्यान करने का, गिरि यानी पहाड़ी पर्वत या स्थान। क्योंकि हजारों वर्षों से जैन मुनियों की यह तपोभूमि रही है इसलिए इसका 'विन्ध्यगिरि' नाम उचित ही लगता है। एक जन-श्रुति यह भी है कि चामुण्डराय ने चन्द्रगिरि पर्वत से बाण छोड़कर यहां पत्थर बेधा था। इसलिए प्रारम्भ में इसका नाम 'वध्यगिरि' रहा होगा और कालान्तर में वही 'विन्ध्यगिरि' बन गया होगा। एक विचार यह भी हो सकता है कि गोमटेश्वर की मूर्ति गढ़नेवाले कलाकारों में सम्भवतः कोई उत्तर भारत के विन्ध्यप्रदेश का मूर्तिकार भी रहा हो, जिस कारण उस कलाकार के देश के नाम पर इसे विन्ध्यगिरि कहने लगे हों। विन्ध्य प्रदेश में स्थान-स्थान पर जैन-मन्दिर मिलते हैं जो ७ वी-८वी शताब्दी से लेकर १२ वी शताब्दी तक के निर्मित हैं। इससे प्रकट है कि किसी समय विन्ध्यप्रदेश में सुप्रसिद्ध मूर्तिकार और वास्तुकार थे

और हो सकता है, इसी विन्ध्यगिरि पर स्थापत्य कला की विश्व विख्यात कामदेव बाहुबली की ५७ फुट ऊँची जो खड्गासन मूर्ति विराजमान है उसके निर्माण में विन्ध्यप्रदेश के किसी कलाकार का प्रमुख सहयोग रहा हो।

पर्वत पर ऊपर जाने के लिए ग्रेनाइट पत्थर को काटकर ६५० सीढ़ियां बनाई गई हैं जिससे ऊपर पहुंचने में अत्यन्त सुविधा हो गई है। बिना सीढ़ियों के पहाड़ पर चढ़ना कष्टसाध्य होता है। सीढ़ियां प्रारम्भ होने से पूर्व प्रवेश-द्वार पर क्षेत्राभिवृद्धि समिति का कार्यालय है। पहाड़ पर चढ़ने से पहले क्षेत्राभिवृद्धि निधि में कम-से-कम ५० पैसे दान देकर रसीद ले लेना प्रत्येक यात्री के लिए आवश्यक है। यहां पर पूछताछ कार्यालय भी है जहां आवश्यक पूछताछ भी की जा सकती है। यहीं पादरक्षा आदि उतार दिये जाते हैं। चलने में असमर्थ वृद्ध, रोगी आदि के लिए किराये पर डोली मिलने की व्यवस्था भी यहीं है।

सीढ़ियों पर चढ़ते ही बायीं ओर ब्रह्मदेव का मन्दिर है। यहां के लोग इसे 'जारगुप्पे अप्पा' कहते हैं। इसकी दूसरी मंजिल में जैनों के २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति है। थोड़ा और ऊपर चढ़ने पर बाहुबली स्वामी के मन्दिर के सबसे बाहरी परकोटे के द्वार पर पहुंच जाते हैं। यह द्वार सदा खुला रहता है। परकोटे के भीतर आठ मन्दिर हैं। भीतर के सभी मन्दिर, स्तम्भ, और मूर्तियां गोमटेश्वर मूर्ति की स्थापना के बाद भिन्न-भिन्न राजाओं ने अलग-अलग समय पर अपनी विजय के उपलक्ष में अथवा अपनी दर्शनविशुद्धि के लिए बनवायी थीं।

चौबीस तीर्थंकर बस्ती

बस्ती शब्द कन्नड़ बसदि शब्द का रूपान्तर है। पहले वह बसति हुआ होगा फिर बस्ती। कन्नड़ भाषा में बसदि का अर्थ होता है मन्दिर इस प्रकार इसका अर्थ हुआ चौबीस तीर्थंकर मन्दिर। बाहर परकोटे से प्रवेश करते ही दांयी ओर बहुत ही छोटा मन्दिर है। इसमें २४ तीर्थंकरों की मूर्तियां एक ही अखंड शिला में निर्मित है। शिलालेख संख्या ११८ से ज्ञात होता है कि सन् १६४८ में श्री चारुकीर्ति पंडिताचार्य और धर्मचन्द्रजी द्वारा इसका निर्माण करवाया गया था।

बोदेगल बस्ती

इस परकोटे में बोदेगल बस्ती सबसे बड़ा मन्दिर है जो एक ऊंचे चबूतरे पर बना है और सीढ़ियां चढ़कर मन्दिर तक पहुंचना पड़ता है। दीवारों को रोक रखने के लिए चारों ओर से टेकें लगाने के कारण ही इसका नाम बोदेगल बस्ती पड़ गया। इसमें तीन गर्भ-गृह हैं जिनमें तीन मूर्तियां स्थापित हैं। इसलिए इसे 'त्रिकूट चैत्यालय' मन्दिर भी कहते हैं। बीच में गर्भ-गृह में प्रजापति आदिनाथ की पांच फुट ऊंची भव्य प्रतिमा है। दाहिनी ओर गर्भ-गृह में तीर्थंकर शांतिनाथ और बांयीं ओर के गर्भ-गृह में तीर्थंकर नेमिनाथ की मूर्तियां स्थापित हैं। इसके बीच में पत्थर का एक अति सुन्दर कमल बना है। इस मन्दिर का निर्माण कब हुआ और किसने कराया इसकी कोई जानकारी अभी तक नहीं मिली। किन्तु यह काफी प्राचीन प्रतीत होता है। मूर्तियां अत्यन्त मनोज्ञ, सुन्दर और कलापूर्ण हैं।

त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ

बोदेगल बस्ती को छोड़कर आगे विशाल शिलामय मार्ग से चढ़ने पर जो सामने दृष्टिगोचर होता है वही 'त्यागद ब्रह्मदेव स्तम्भ' बताया जाता है। यहीं पर बैठकर चामुण्डराय ने बहुत दान दिया था। इस स्तम्भ की खूबी यह है कि यह जमीन को छूकर चार इंच ऊपर अधर में लटकता है। इसके नीचे से अपना रूमाल निकाला जा सकता है। किन्तु अब इसका एक कोण जमीन से छू गया है। किवंदन्ति है कि किसी अपात्र व्यक्ति ने उस पर बैठने का यत्न किया, तब वह स्तम्भ एक ओर झुक गया। आधुनिक वैज्ञानिक केवल यही कहेंगे कि विन्ध्यगिरि पर्वत माला के चारों ओर दूसरी पहाड़ियों पर जब पत्थर प्राप्त करने के लिए विस्फोट किये जाते हैं तो उस समय भूमि हिलने के कारण ऐसा हो गया होगा। इसका भी निर्माण चामुण्ड-राय ने करवाया था। इस स्तम्भ के दक्षिण भाग की ओर गुरु-शिष्य की एक मूर्ति है। ये मूर्तियां चामुण्डराय और उनके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती की है। यह स्तम्भ कला और ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चामुण्डराय ने यहां बैठकर दान, धर्म किया था, संभवतः इसलिए इसे 'त्यागद' स्तम्भ कहा जाता है।

चेन्नण्ण बस्ती

त्यागद स्तम्भ के पश्चिम की ओर भगवान चन्द्रप्रभु का यह मन्दिर है। इसके आगे मान स्तम्भ बना है। मन्दिर के बाहर उत्तर-पूर्व की ओर दो कुण्ड हैं, जिनके बीच में स्तम्भों से सुशोभित एक खंडित सभा मंडप है।

अखंड बागिलु (अखंड द्वार)

चेन्नण्ण बस्ती से लौटकर सीढ़ियों से ऊपर चलने पर अखंड द्वार मिलता है। गोमटेश्वर के दर्शन के लिए जाते समय यह पहला द्वार है। इस द्वार का निर्माण एक अखण्ड शिला को काटकर किया गया है। यह पत्थर, चूने से नहीं बनाया गया। इसके ऊपरी भाग पर कलापूर्ण गज-लक्ष्मी उत्कीर्ण है। इसके दाहिनी ओर ही एक ऊंची अखण्ड शिला है जिसे 'सिद्धर गुण्डु' अर्थात 'सिद्ध शिला' कहते हैं। इस पर कुछ शिलालेख भी हैं। ऊपरी हिस्से में जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के मुनि दीक्षित १०० पुत्रों के चित्र उत्कीर्ण हैं। इस द्वार का भी निर्माण चामुण्डराय ने कराया था। अखण्ड द्वार के बाद दोनों ओर खड़े अखण्ड पत्थर के द्वारों के बीच से सीढ़ियों पर चढ़कर आगे का दूसरा द्वार मिलता है। उससे आगे पर्वत के शिखर पर परकोटे का बड़ा द्वार है। इसमें प्रवेश करते ही, बाहुबली मन्दिर का बाहरी प्रांगण मिलता है। इसके बायीं ओर सिद्धर बस्ती अर्थात् सिद्ध मन्दिर है। इसमें सिद्ध भगवान की मूर्ति है और दो आचार्य-परम्पराओं के शिला लेख हैं। एक शिलालेख के नीचे शिष्य को उपदेश देते हुए आचार्य का चित्र उत्कीर्ण है। यह दोनों ही शिलालेख अत्यन्त महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक हैं।

भक्ति की प्रतीक गुल्लिकायज्जी

सिद्ध मन्दिर के ठीक सामने पश्चिम की ओर एक स्त्री गुल्लिका अथवा घंटी (एक प्रकार के फल की आकृति का रौप्यपात्र) हाथ में लिये खड़ी है। यही गुल्लिकायज्जी हैं। इसकी स्थापना का कारण एक पौराणिक गाथा के अनुसार बहुत ही दिलचस्प है। कथा इस प्रकार है -

बाहुबली स्वामी की ऐतिहासिक मूर्ति के निर्माण के बाद चामुण्डराय के मन में यह अहं भाव उत्पन्न हो गया कि संसार में अनेक राजा-महाराजाओं के रहते हुए भी मैंने इतनी विशाल मूर्ति का निर्माण कराया है। इस गर्व के परिणाम स्वरूप, कहा जाता है कि चामुण्डराय ने मूर्ति के मस्तक से सहस्त्रों घड़े दूध, पानी डाले किन्तु आश्चर्य कि दुग्ध मूर्ति के वक्ष से नीचे नहीं उतरा। चामुण्डराय को चिन्ता हुई। कहा जाता है कि उसी समय क्षेत्र की शासन देवी अम्बिका-कूष्माडिनी गुल्लिकायज्जी के रूप में प्रकट हो गई। हाथ में एक छोटी सी गुल्लिका (गोलक) में दूध भरा हुआ था। उन्होंने चामुण्डराय से कहा-यदि आज्ञा हो तो मैं इस दूध से बाहुबली स्वामी की मूर्ति का पूर्ण अभिषेक कर दूं।

चामुण्डराय को उस स्त्री के हाथ में छोटे से पात्र में दूध देख कर हंसी आ गई। जब हजारों घड़े दूध से पूर्ण अभिषेक न हो सका तो इस गुल्लिका-घटी के छटांक-भर दूध से वह कैसे पूर्ण होगा। किन्तु उस वृद्धा के सदाग्रह को उन्होंने स्वीकार कर लिया और अभिषेक का अवसर दिया। देखते-ही-देखते वह जीर्ण वृद्धा एक युवती की स्फूर्ति से मचान पर चढ़कर ठेठ ऊपर पहुंच गई और वहां से अपनी गुल्लिका से भगवान बाहुबली की प्रतिमा के मस्तक से दूध छोड़ने लगी। कैसा अद्भुत दृश्य रहा होगा जब उस चुल्लू भर दूध से मूर्ति का पूर्ण अभिषेक तो हो ही गया, समस्त प्रांगण भी दूध से भर गया। वही दूध पर्वत से बहता हुआ नीचे पहुंचा जिससे वहां एक सरोवर बन गया। वही आजकल कल्याणी सरोवर कहलाता है। इस कथा से प्रभावित होकर मैसूर के एक भूतपूर्व महाराजा मुम्मडी कृष्णराज ओडेयार ने उस तालाब को पत्थरों से बनवाकर, उसका स्वरूप निखारा और उसका नाम 'कल्याणी केरे' रखा। तभी से इसे कल्याणी सरोवर कहा जाता है।

उपर्युक्त घटना से चामुण्डराय का गर्व खर्व हुआ और उससे प्रभा-

वित होकर उन्होंने स्वामी गोमटेश्वर का पूर्णाभिषेक करनेवाली गौरवशालिनी गुल्लिकायज्जी की मूर्ति का निर्माण करवा कर उन्हें सम्मानित किया। यही वह मूर्ति है जो भक्ति के प्रतीक रूप में बाहुबली स्वामी के चरण-युगलों में अपने नेत्र झुकाये खड़ी है। इस मूर्ति के ऊपर के मंडप में ब्रह्मदेव यक्ष की पद्मासन मूर्ति हैं जिसकी दृष्टि भगवान बाहुबली के पावन चरणों में लगी हुई है।

प्रसिद्ध जैन ग्रंथ 'गोम्मटसार' के अनुसार इस यक्ष के मुकुट में एक प्रकाशमय रत्न है जिसकी आभा भगवान बाहुबली के चरणों को नित्य प्रक्षालन करती है।[1] उनके सामने ही भगवान बाहुबली के मन्दिर का द्वार है। द्वार के दोनों ओर द्वारपाल की खड़ी मूर्तियां हैं। यहीं एक शिलालेख भी है। मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही भगवान बाहुबली के पवित्र चरणधरा प्रांगण में पहुँच जाते हैं। इस प्रांगण में अपूर्ण शौर्य, त्याग, तप और अनंत शांति की प्रतीक ध्यान-मग्न, विशालकाय अर्द्धनिमीलित नयन, भगवान बाहुबली की अत्यन्त कलामय, दिव्य मूर्ति का दर्शन होता है। भगवान के चरण-युगल के नीचे विशाल कमल बना हुआ है और उनके चरणों पर ब्रह्म यक्ष की मुकुट-मणि-किरणें पड़ने से नख-पंक्तियाँ चमक उठती हैं। उनका उन्नत ललाट, घुंघराले केश, मन्द हास्य पूर्ण करुणामय मुख मण्डल, सुन्दर विशाल कर्णद्वय, क्षीण कटि-तट, अर्द्ध निर्मीलित नयन युगल, सबल जानु, विचुम्बित भुजाएं, समुन्नत विशाल वक्षस्थल और अन्य अंग-प्रत्यंग दिव्य भावों से पूर्ण हैं।

कितने साम्राज्य गये, कितने राजा महाराजा नष्ट हुए, कितने राजा रंक और रंक राजा बने और कितने श्रीमन्त और नरेश इस भव्य मूर्ति का दर्शन और पूजा आराधना करके धन्य हुए, पर यह सौम्य

---

१. गोम्मटसार जीव काण्ड गाथा ७३३, पृ०-६७१

मूर्ति आज भी उसी प्रकार से अचल और अनन्त सौन्दर्य से पूर्ण है। एक बार इस मूर्ति की ओर दृष्टि डालिये तो फिर आँखें वहाँ से हटना नहीं चाहेंगी। इसलिए तो जब तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू उस मूर्ति के दर्शन करने पहुंचे तो वे काफी देर तक उसे देखते ही रह गये और उन्होंने यह भाव प्रकट किया कि कोई मूर्ति भी इतनी सुन्दर हो सकती है कि जिस पर से दृष्टि हटना ही न चाहे, यह मैंने आज पहली बार ही देखा।

मूर्ति और इतिहास

गोम्मटेश्वर की यह मूर्ति ध्यानमग्न, खड्गासन इतनी ऊँचाई पर है कि विन्ध्यगिरि के चारों ओर २५ किलोमीटर दूर तक से दिखायी पड़ती है। इसकी ऊँचाई ५७ फुट अथवा १७ मीटर है। जिस शिलाखण्ड से इसका निर्माण हुआ है, वह इस पर्वत का अंग और सबसे ऊपर का भाग है। इसका रंग हल्के भूरे रंग का है। मूर्ति उत्तर की ओर मुख करके खड़ी है। विन्ध्यगिरि के शिखर पर स्थित अखंड शिला हजारों वर्षों से बढ़ती रही है, इसीलिए इसे जीवित शिला की मूर्ति कहते हैं। यही कारण है कि नित्य अभिषेक के साथ एक हजार वर्ष बीत जाने पर भी और खुले आकाश के नीचे कठोर गरमी, वर्षा और सर्दी के बावजूद इस मूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसा मालूम होता है मानो अभी-अभी मूर्तिकार की छेनी रुकी है।

प्रथम मूर्ति

एक पौराणिक गाथा के अनुसार भगवान बाहुबली की पहली मूर्ति पोदनपुर में भरत चक्रवर्ती ने शरीराकृति ५२५ धनुषाकार पन्ना रत्न की बनवायी थी। पश्चात् उसे कुक्कुट सर्पों ने घर लिया।

पोदनपुर कहां है, इसका शोध होना चाहिए। अनुमान यह किया जाता है कि पोदनपुर अथवा पुरुषपुर पेशावर के आसपास कहीं था। वहीं पर पहली मूर्ति का निर्माण हुआ होगा किन्तु कालान्तर में या तो वह मूर्ति समाप्त हो गई अथवा कहीं भूमि में गढ़ी पड़ी होगी। निसन्देह इसका शोध अब असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो गया है। पेशावर का वह भूभाग अब पाकिस्तान में है।

मूर्ति की विशिष्टता

विन्ध्यगिरि पर विराजमान बाहुबली की यह मूर्ति संसार की सबसे सुन्दर मूर्तियों में मानी जाती है। स्थापत्य एवं वास्तुकला के पंडित बिना इस भेद भाव के कि यह मूर्ति किस जाति अथवा सम्प्रदाय की है, उसके निर्माता भारतीय मूर्तिकार को साधुवाद देते हैं। मिस्र की नील नदी की घाटी में चार हजार साल पुरानी रामेसिस की मूर्ति मिलती है। यहां सांसारिक भोग-विलास के भोगनेवाले राजा-रानियों की कई मूर्तियां और भी हैं।

कर्नाटक प्रान्त में ही हलेबिडु, बेल्लूर, सोमनाथ आदि के मन्दिरों में हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां कला की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण हैं। किन्तु गोम्मटेश्वर की वीतराग मुद्रा, त्यागमय ध्यान और शांत पर्याय यह मूर्ति अपनी शोभा, शालीनता की दृष्टि से संसार भर की मूर्तियों में विशिष्टता रखती है।

संसार भर में मूर्तियां प्रायः एक स्थान पर बनायी जाती हैं दूसरी जगह स्थापित की जाती है किन्तु इस मूर्ति को जहां यह आज है, वहां एक हजार वर्ष पहले एक ही शिलाखण्ड काट कर बना गया था और खूबी देखिए कि इसका एक-एक अंग अपने-अपने स्थान पर ठीक अनुपातों से बना पड़ा है। जड़-चेतनामय विश्व में अनेक बहु-

मूल्य मूर्तियां प्राप्त हैं किन्तु इस मूर्ति के अतिरिक्त वैराग्यमय त्याग और तप से पूर्ण और कलामय पवित्र धारा के प्रवाह से हृदय की तमोग्रन्थियों को छेदने वाली कल्याणमय प्रतिमा संसार में दुर्लभ है।

मूर्तियों का महत्व कहीं उसकी विशालता से है तो कहीं सौन्दर्य से और कहीं अलौकिक वैभव से। किन्तु यह मूर्ति तीनों का समुच्चय है। प्रायः देखा जाता है कि कोई मूर्ति कला की दृष्टि से पूर्ण न होने पर भी धार्मिक दृष्टि से प्रसिद्ध है। तो कहीं कला के सूक्ष्म चित्रण से और कहीं अपनी ऐतिहासिकता से आदृत है किन्तु बाहुबली की यह मूर्ति धर्म, कला, सौन्दर्य ऐतिहासिकता सभी दृष्टियों से प्रसिद्ध है। गोम्मटेश्वर की मूर्ति के सामने खड़े होने से बड़े पवित्र और शान्त भावों का उदय होता है। छोटे बालक भी उस ऊंचाई से भयातुर नहीं होते। कन्नड महाकवि बोम्मण्ण ने लिखा है—"जब कोई मूर्ति अत्यंत उन्नत हो जाती है, तब उसमें सौन्दर्य नहीं पाया जाता। जब सौन्दर्य और विशालता का समन्वय पाया जाता है तब उसमें दैवी कला के दर्शन होते हैं। किन्तु गोम्मटेश्वर की मूर्ति की विशालता, सौन्दर्य, कला और दैवी अतिशय का सम्मिश्रण प्रथम जिनेन्द्र के समान त्रिभुवन में पूज्य है। अनेक युग बीत गये, एक के बाद एक कितनी सभ्यताएं, राजसत्ताएं आईं और काल के गर्भ में खो गईं। अपनी सत्ता और धर्म की रक्षा के नाम पर उन्होंने कितनी लड़ाइयां लड़ीं। चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई कोई भी क्यों न हों, भगवान गोम्मटेश्वर के आगे सदा मुग्ध और नतमस्तक रहे।"

धन्य है वे जिन्होंने अपने जीवन में इस महिमामय, सातिशय मूर्ति का दर्शन किया। धन्य है वे भव्य-जन, जिन्होंने अपने समय एवं धन को इस भव्य कल्पनामय मूर्ति के दर्शन में लगाया। धन्य हैं उनके अतृप्त नेत्र, और उनका समस्त जीवन ही धन्य है।

कुछ सम्मतियां

सुदूर दक्षिण में इस मूर्ति का दर्शन करके जिन विचारकों, विद्वानों एवं पर्यटकों ने अपने भाव व्यक्त किये, उनमें कुछ इस प्रकार हैं :

स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा—"श्रवण बेलगोल के दृश्य अद्भुत हैं। वे संसार के उन चकित करने वाले स्थानों में हैं जिनको न देखना मानो मनुष्य की कृतियों के उत्तमोत्तम नमूनों को न देखना है... बहुत विशाल मूर्ति एक पहाड़ की चोटी पर काट कर बनायी गयी है जो बहुत दूरी से प्राय: १०-१५ मील की दूरी से नजर आने लगती है। तारीफ यह है कि इतनी बड़ी मूर्ति कुछ अलग से तैयार करके वहां चोटी पर बैठायी नहीं गई। बल्कि उस पहाड़ी की चोटी काटकर बनायी गयी है और चारों ओर की पहाड़ी काटकर समतल कर दी गयी है। मूर्ति ऐसी सुन्दर है कि चाहे आप मीलों दूरी से देखिये, चाहे नजदीक आकर, उसके सभी अंग ऐसे अनुपात से बनाये मालूम होंगे कि कहीं कुछ भी कमी मूर्ति में नजर न आयेगी। प्रत्येक अंग-पैर की उंगलियों से लेकर, नाक-कान तक अपने-अपने स्थान ठीक अनुपात से बनाये दीख पड़ते हैं।"

(आत्मकथा पृष्ठ-५६६)

प्रथम प्रधानमंत्री, महान-विचारक और विश्व-पर्यटक स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने जब भगवान बाहुबली के दर्शन किये तब उन्होंने अपने भरे हृदय के भावों को यों चित्रित किया—"मैं आज यहां आया और इस आश्चर्यजनक मूर्ति को देखा और प्रसन्न हुआ।"

(प्रेक्षक पुस्तिका जैन मठ)

भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष, प्रकांड पंडित राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने अपने विचार यों व्यक्त किये हैं—"इस मूर्ति की विशालता

में जो सापेक्षता दिखायी देती है, वह अद्भुत कौशल का उदाहरण है। मौखिक आकृति में कला और त्याग का समन्वय है। सम्पूर्ण मूर्ति में अद्भुत कल्पना प्रदर्शित होती है।' (उपरोक्त प्रेक्षक पुस्तिका)

शिल्प शास्त्र के महान वेत्ता डा० फरग्यूसन लिखते हैं—"मिस्र के अतिरिक्त कहीं भी इतनी भव्य और प्रभावक वस्तु नहीं उपलब्ध होती। वहां भी इससे बड़ी मूर्तियां ज्ञात नहीं हुई हैं।"

(उपरोक्त प्रेक्षक पुस्तिका पृष्ठ-१०)

मैसूर नरेश स्वर्गीय श्रीमान् कृष्णराज ओड्यार ने कहा था—"जिस प्रकार भारतवर्ष बाहुबली के बन्धु भरत के साम्राज्य के रूप में विद्यमान हैं, उसी प्रकार यह मैसूर की भूमि गोम्मटेश्वर की आध्यात्मिक साम्राज्य की प्रतीक रूप है।

"मेरे पूर्वज तथा स्वयं मैं जैन धर्म के सिद्धान्तों के विशेषकर अहिंसा-सिद्धान्त के प्रशंसक रहे हैं। मैं तथा मेरा शासन अपने को कृतार्थ अनुभव करते हैं जो हम श्री गोम्मटेश्वर की जगतविख्यात मूर्ति का संरक्षक बनने का सौभाग्य मिला।" (महामस्तकाभिषेक)

मैसूर राज्य के भूतपूर्व दीवान, मुस्लिम विद्वान सर मिर्जा इस्माइल द्वारा व्यक्त महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति—"गोम्टेश्वर की मूर्ति मैसूर राज्य का भूषण और गौरव की वस्तु है। जब-जब मैं श्रवणबेलगोल जाता हूं तथा जब भी वहां के विषय में सोचता हूं, तब मेरा मन उस सुदूरवर्ती काल की ओर जाता है, जिस समय इस महान मूर्ति का निर्माण हुआ होगा। मूर्ति का अध्ययन आश्चर्यप्रद है। मैं शिल्पी की असाधारण योग्यता पर सदा चकित होता हूं कि उसने विशाल रूप से कार्य करते हुए अंगों के अनुपात का संरक्षण तो किया ही, उसने पाषाण में ही प्राण, सौन्दर्य तथा अभिव्यक्ति भर दी है।'

(सुवनीर आफ़ मैसूर जैन एसोसियेशन १९८० पृष्ठ ५७)

कहा जाता है कि जब १७६६ में आर्थर वेलजली ने मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टन पर घेरा डाला, तब वहाँ जाते हुए उस मूर्ति की भव्यता, विशालता और कला को देखकर वह अंग्रेज ठगा-सा रह गया। युद्ध की हालत में भी इस मूर्ति को देखने में उसने पूरे दो दिन लगाए और अपने सामने इसकी नाप-जोख करायी। बाद में यह (आर्थर वेलेजली) भारत का गवर्नर जनरल बना। कहा जाता है कि उसी समय में विन्ध्यगिरि पर्वत को चारों ओर से साफ किया गया था।

द्वितीय और अद्वितीय मूर्ति

बाहुबली स्वामी की पहली मूर्ति ५२५ धनुपाकार पोदनपुर में स्थापित हुई थी। वह कहां थी, आज इसका कोई पता नहीं चलता। श्रवणबेलगोल पर दूसरी मूर्ति की स्थापना १०वीं शताब्दी में हुई। मैसूर राज्य के गंगवंशीय राजा राचमल्ल (चतुर्थ) के प्रधान सेनापति एवं प्रधानमंत्री चामुण्डराय ने इसका निर्माण कराया था। राचमल्ल नरेश ने सन् ६७४ से ६८४-१० वर्ष तक गंगवाड़ी में राज्य किया था।

चामुण्डराय बड़े धार्मिक और गुरु-भक्त व्यक्ति थे। इनके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती थे। किन्तु स्वयं नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने महान ग्रन्थ गोम्मटसार में उन्हें आचार्य अजितसेन का शिष्य बतलाया है। ऐसा लगता है कि चामुण्डराय के प्रथम गुरु आचार्य अजितसेन ही रहे होंगे। उनकी माता काललता देवी आचार्य अजितसेन की बड़ी भक्त थीं।

एक बार उन्होंने आचार्य अजितसेन से आदि पुराण में भरत चक्रवर्ती निर्मित ५२५ धनुपाकार पन्ना की मूर्ति का वर्णन सुना। उस धर्मभक्त देवी के मन में उस मूर्ति के दर्शन की इच्छा बलवती हो आई। मातृभक्त चामुण्डराय ने अपनी माता की इच्छा पूर्ति के लिये

सदलबल पोदनपुर की यात्रा प्रारम्भ की। मार्ग में कटवप्र (श्रवणबेल-गोल) पहुंचे। यहां आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती चन्द्रगिरि पर विराजमान थे। उनके सानिध्य में माता सहित चामुण्डराय के दल ने विश्राम किया। कहा जाता है कि रात को इस क्षेत्र की शासन देवी कूष्मांडिनी ने एक साथ आचार्य नेमिचन्द्र, चामुण्डराय और उनकी माता काललादेवी, तीनों को स्वप्न दिया। स्वप्न में तीनों को ही ऐसा लगा कि देवी कह रही है—

'पोदनपुर यहां से बहुत दूर है। मार्ग भी अत्यन्त कठिन है। फिर वहां की बाहुबली की मूर्ति कुक्कुट सर्पों से घिर जाने के कारण अदृश्य हो गई है। इसलिए उसके दर्शन सम्भव नहीं हैं। अतः वहां न जाओ। प्रातःकाल उठकर उत्तर की ओर मुंह करके पीछे दक्षिण की ओर बाण छोड़ो। जहां बाण गिरे वहीं तुम्हें भगवान बाहुबली का दर्शन होगा।'

भक्त चामुण्डराय ने सुबह उठकर नेमिचन्द्र आचार्य को अपने स्वप्न की बात बतलायी। आचार्य श्री और माता काललादेवी ने कहा कि उन्होंने भी ऐसा ही स्वप्न देखा है। आचार्य श्री ने प्रातःकाल शुभ मुहूर्त निकाला। चामुण्डराय ने उत्तराभिमुख खड़े होकर हाथों को पीठ पीछे ले जाते हुए दक्षिण की ओर सुवर्ण बाण छोड़ा। यह स्थान आज भी चन्द्रगिरि पर्वत पर है। बाण विन्ध्यगिरि के शिखर पर स्थित एक दीर्घ विशालकाय शिलाखंड पर गिरा। चाणमुडराय ने उस पाषाण-खंड में भगवान बाहुबली के दिव्य रेखाचित्र का दर्शन किया। उसी रेखाचित्र के आधार पर मूर्ति का निर्माण हुआ। इस मूर्ति का निर्माण किस शिल्पी ने किया, यह निर्विवाद रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु चन्द्रगिरि पर एक शिलाखंड पर बनी भरतेश्वर की अपूर्ण मूर्ति पर अरिष्टनेमि का नामोल्लेख है। उससे ऐसी कल्पना की

जाती है कि बाहुबली की मूर्ति का महान कलाकार भी अरिष्टनेमि ही रहा होगा ?

एक अन्य किंवदन्ति के अनुसार लंका-विजय के बाद भगवान राम अयोध्या लौटते समय सदलबल यहां पधारे थे। सती सीता को यह रमणीक स्थान बहुत भाया और विंध्यगिरि पर वे कुछ समय रुकीं। वे पूजा-आराधना के लिए अपने आराध्य बाहुबली की एक पन्ने की मूर्ति साथ रखती थीं। उस दिन जब पूजा समाप्त हो गई और प्रस्थान का अवसर आया तो सर्वोच्च शिलाखंड पर वह पन्ने की मूर्ति स्थिर हो गयी। उठाई न जा सकी। तब श्री राम ने अपने धनुष से उस शिलाखंड पर उस मूर्ति की एक अनुकृति रेखांकित कर दी। समय बीतता गया। हजारों वर्ष व्यतीत हो गए तो उस शिलाखंड पर मिट्टी जम गई और छोटे पेड़-पौधे उग आये। जब चामुण्डराय का सुवर्ण बाण उस शिला पर लगा तो मिट्टी साफ हो गई और भगवान राम द्वारा रेखांकित मूर्ति की रूपरेखा दिखाई देने लगी। उसे जब और साफ किया गया तो पूरी की पूरी मूर्ति की रूप रेखा दृष्टिगोचर हो गई। कहा जाता है कि उसी रेखांकन के आधार पर वर्तमान ऐतिहासिक मूर्ति का निर्माण किया गया।

जब मूर्ति का निर्माण हुआ तो धर्म-भक्त माता काललादेवी की इच्छा पूर्ण हुई। आचार्य प्रसन्न हुए। इस अवसर्पिणी काल में प्रथम मन्मथ और मोक्षगामी भगवान बाहुबली की द्वितीय और अद्वितीय मूर्ति खड़ी हो गई। स्थापत्य कला चिरंतन काल तक प्रतिष्ठित हो गई। कोटि-कोटि जन-हृदय दर्शन से मुग्ध हो गए। आकाश से जल-वृष्टि के रूप में पुष्पवृष्टि हुई। चारों ओर 'धन्य-धन्य चामुण्डराय' का स्वर गूंज उठा।

इस मूर्ति की प्रतिष्ठा के संबंध में कई मत हैं। कुछ का कहना है कि

इसकी स्थापना २३ मार्च, १०२८ को की गई। कुछ इससे भिन्न मत रखते हैं। किंतु बहुसम्मत प्रसिद्ध मत यह है कि 'कल्याब्दे षटशतारके विनुतविभव संवत्वरे मासि चैत्रे पंचम्यां शुक्ल पक्षे दिनमणि दिवसे कुम्भ लग्ने सुयोगे। सौभाग्ये मस्तनमिने प्रकटित भगेण सुप्रशतां चकार— श्रीमच्चामुण्डरायो बेलगुल नगरे गोमटेश प्रतिष्ठाम्।'

अर्थात् काल संवत ६०० में विभव नाम संवत्सर के चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी, रविवार को मृगशिरा नक्षत्र कुम्भ लग्न में श्रीमद् चामुण्डराय ने बेलगुल ग्राम मे शुभकारिणी गोम्मटेश्वर भगवान की मूर्ति की प्रतिष्ठा की।

इस संबंध में आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य लिखते हैं, हमारे नम्र मतानुसार भारतीय ज्योतिष की गणना के अनुसार विभव संवत्सर, चैत्र शुक्ला पंचमी, रविवार को मृगशिर नक्षत्र का योग १३ मार्च, सन् ६८१ को होता है। अतः मूर्ति का प्रतिष्ठा काल सन ६८१ ही होना चाहिए।

(तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, खण्ड २, पृष्ठ ४२२)।

बाहुबली की मूर्ति के दोनों ओर चंवर धारण किये, बनी हैं, इन्द्र और इंद्राणी की कलापूर्ण मूर्तियां। बायीं ओर गोलाकार एक पाषाण पात्र बना हुआ है, उसे ललित सरोवर कहते हैं। शिलालेख न० १८६ में इसका उल्लेख है। भगवान का गन्धोदक इस पात्र में जमा होता है और अधिक आने पर एक नाला अथवा मूर्ति के सामने कूप से होकर मन्दिर के परकोटे के नीचे के गुप्त मार्ग से इंद्र और चन्द्र पहाड़ियों के बीच में स्थित कल्याणी सरोवर में पहुंच जाता है। चरणों के दायीं और बायीं ओर बमींठे हैं जिनमें से सर्प सिर उठाये दीख रहे हैं। देह यष्टि पर लताएं चढ़ गई हैं। मूर्ति के सामने के मण्डप में नौ कलापूर्ण छतें हैं। इनमें आठ छतों पर अष्ट दिक्पालों की कला-

मय भव्य मूर्तियां हैं। बीच की छत में अभिषेकार्थ पूर्ण कुम्भ धारण किये हुए इन्द्र की सुन्दर मूर्ति है जो द्रविड़ स्थापत्य कला की अपूर्व देन है। मंडप के ऊपर चूने की बनी हुई कूष्मांडिनी, पद्मावती, इन्द्र, सरस्वती एवं लक्ष्मी की मूर्तियां हैं। मंडप के स्तम्भों पर शिलालेख और नृत्य करती हुई सुन्दरियों के चित्र उत्कीर्ण हैं।

सुत्तालय (प्रदक्षिणालय)

मूर्ति के दोनों ओर प्रदक्षिणालय और चारों ओर परकोटे हैं। इसका निर्माण गंगराज ने सन् १११५ ई० में किया था। गंगराज होयसल राजा विष्णुवर्धन का सेनापति था। इस सुत्तालय अथवा प्रदक्षिणालय के भीतर ४० मूर्तियां और एक शिलालेख है। मूर्तियों में एक सिद्ध परमेष्ठी, एक कूष्मांडिनी और एक गणधर चरण हैं। मुख्य मंडप की दायीं ओर में जाते ही इस क्षेत्र की शासन देवी कूष्मांडिनी के आगे चन्द्रनाथ स्वामी (अमृतशिला) है। इसके आगे सुत्तालय (प्रदक्षिणालय) प्रारम्भ होता है। इसके भीतर क्रमशः (१) पार्श्वनाथ (२) शांतिनाथ (३) शिलालेख (४) आदिनाथ (५) पद्मप्रभुनाथ (६) अजितनाथ (७) वासुपूज्य (८) कुंथनाथ (९) विमलनाथ (१०) अनन्तनाथ (११) सम्भवनाथ (१२) सुपार्श्वनाथ (१३) पार्श्वनाथ (१४) मल्लिनाथ (१५) शीतलनाथ (१६) अभिनन्दननाथ (१७) चन्द्रनाथ (१८) श्रेयांसनाथ (१९) मुनिसुव्रतनाथ (२०) सुमतिनाथ (२१) पुष्पदंत (२२) सिद्ध परमेष्ठी (२३) नमिनाथ (२४) नेमिनाथ (२५) वर्धमान महावीर (२६) शांतिनाथ (२७) अरहनाथ (२८) मल्लिनाथ (२९) मुनिसुव्रतनाथ (३०) पार्श्वनाथ (३१) महावीर (३२) विमलनाथ (३३) पार्श्वनाथ (३४) धर्मनाथ (३५) महावीर (३६) मल्लिनाथ (३७) शांतिनाथ (३८) कूष्मांडिनी देवी

भवाली स्वामी की पूर्ण मूर्ति

जिननाथपुर मन्दिर के बाहरी दीवार की सजावट का एक चित्र

चन्द्रगिरि पर्वत का एक दृश्य
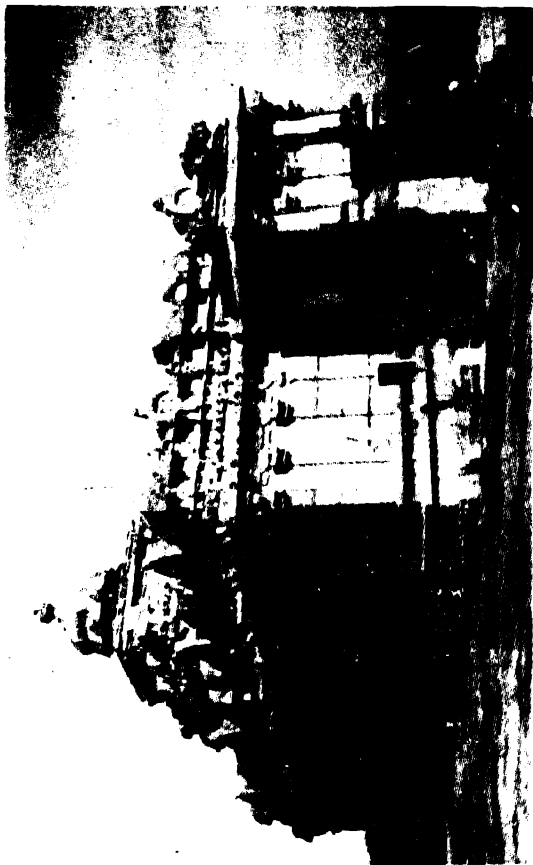
चामुण्डराय बस्ती (चन्द्रगिरि)

भद्रबाहु के पद चिन्ह (चन्द्रगिरि)

पार्श्वनाथ स्वामी
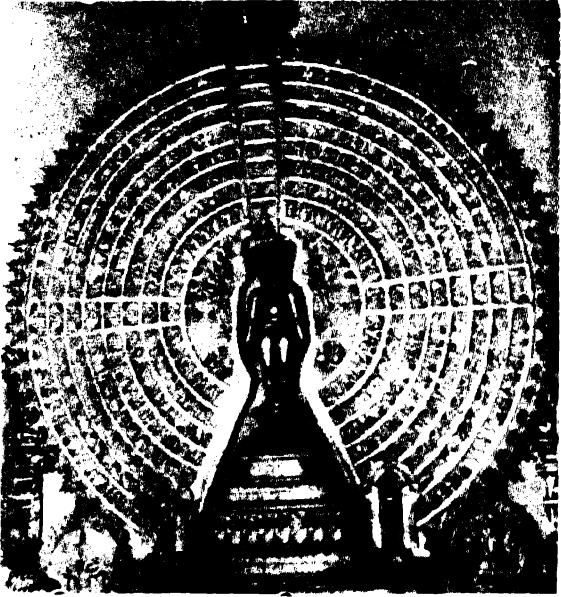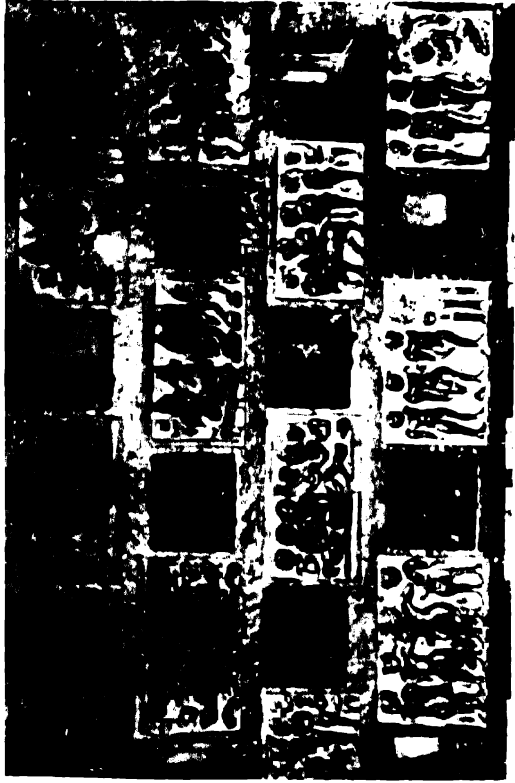
चन्द्रगुप्त बस्ती में चन्द्रगुप्त और भद्रबाहु का पत्थरों पर चित्रित जीवन चरित्र

(३६) गणधर-चरण (४०) बाहुबली-की मूर्तियां हैं।

सुत्तालय के बाहर पुनः चन्द्रनाथ की अमृत शिला की मूर्ति है। इस प्रकार यहां कुल ४३ मूर्तियां हैं।

बाहुबली चरित्र

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव अथवा आदिनाथ की दो रानियां थी—यशस्वती और सुनन्दा। यशस्वती की कुक्षि से भरत के अतिरिक्त ९९ पुत्र और ब्राह्मी नामक कन्या का जन्म हुआ। सुनन्दा की कुक्षि से बाहुबली नामक पुत्र और सुन्दरी नामक कन्या का जन्म हुआ। आदिनाथ प्रजापतित्व पूरा कर श्रमण मुनि बने और उन्होंने अपना राज-पाट त्याग दिया। अपने दोनों पुत्र भरत और बाहुबली को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी बनाया। ज्येष्ठ पुत्र भरत को अयोध्या का राज दिया और कनिष्ठ पुत्र बाहुबली को पोदनपुर का। दोनों अत्यन्त सन्तोषी और धर्मसम्मत चलने वाले राजा हुए। बाहुबली न्याय और नीति से शासन करते रहे।

इसी समय जब भगवान आदिनाथ को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ, भरत की आयुधशाला में चक्ररत्न और अन्तःपुर में पुत्ररत्न का उदय हुआ। महत्वाकांक्षी भरत अपने पिता तीर्थंकर आदिनाथ की केवल-ज्ञान की पूजा के बाद चक्ररत्न के साथ षट्खंड भूमण्डल की दिग्विजय के लिए निकल पड़े। दिग्विजय के उपरान्त जब वे लौटकर अपनी राजधानी अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हो रहे थे, तभी चक्ररत्न अकस्मात रुक गया। भरत को चिन्ता हुई। मंत्रियों ने बतलाया कि ऐसा होने पर यह समझा जाना चाहिए कि दिग्विजय अपूर्ण है। तब भरत ने प्रश्न किया कि दिग्विजय अपूर्ण कैसे है? इसका उत्तर मिला कि अभी आपके सहोदर और बाहुबली अविजित हैं, उनको जीते बिना चक्र

अयोध्या में प्रविष्ट न होगा तब महाराज भरत की ओर से पत्र लिखा गया कि हमारी आधीनता स्वीकार करो या युद्ध के लिये प्रस्तुत रहो। ऐसा पत्र लेकर दूत तत्काल १०० स्थानों को रवाना हो गये। उनके ९९ सहोदर भाई पत्र पढ़कर इस संसार से विरक्त हो गये और कैलाश पर्वत पर आकर अपने पिता आदिनाथ स्वामी से मुनि-दीक्षा ले ली।

बाहुबली के पास भी दूत पहुंचे। पत्र पढ़कर बाहुबली के स्वाभिमान पर चोट लगी। उन्होंने सोचा कि एक क्षत्रिय का धर्म इस प्रकार से हार जाना नहीं है, चाहे चुनौती भाई की तरफ से ही क्यों न आये। उसे स्वीकार करना ही चाहिए। इस प्रकार उनके हृदय में प्रसुप्त युद्धेच्छा जागृत हो गई। दोनों ओर से भयंकर युद्ध की तैयारियां होने लगीं। जिसे देखकर निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता था कि अनगिनत नर-संहार होने ही वाला है। दोनों ओर के कुशल और विद्वान मंत्रियों ने आपस में मंत्रणा की और तब उन्होंने अपने स्वामियों से निवेदन किया कि यह युद्ध दो भाईयों का युद्ध है। इसका एकमात्र लक्ष्य है दोनों में विजेता कौन है? इसके निर्णय के लिए असंख्य नर-संहार करना नितान्त अनुचित है। अतः सैनिकों में युद्ध न होकर वज्रवृषभ नाराच-संहनन शरीरधारी भरत और बाहुबली आपस में अहिंसात्मक युद्ध करके इसका फैसला कर लें। दोनों भाई इस बात के लिए सहमत हो गए और तभी यह निश्चय हुआ कि दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध और मल्ल-युद्ध में जो विजयी रहे, वही विजेता माना जाय।

युद्ध होने लगा—दृष्टि-युद्ध में भरत हार गए, जल-युद्ध में भी बाहुबली जीते। तब मल्ल-युद्ध हुआ और बाहुबली ने भरत को बाहुओं में भर कर ऊपर उठा लिया और इससे पूर्व कि भरत को भूमि पर गिराते, जन-समुदाय ने "बाहुबली की जय" का नारा लगा दिया। यह

अपमान भरत से सहन न हुआ। उन्होंने न्याय-अन्याय को भुलाकर निर्दयता से चक्ररत्न का प्रयोग किया। सभी शंकित-हृदय थे। तभी लोगों ने यह देखा कि चक्ररत्न तीन प्रदक्षिणा देकर बाहुबली के पास आ खड़ा हुआ। भरत क्रोध से तिलमिला उठे, पर निरुपाय थे। विजयश्री बाहुबली की ओर बढ़ी किन्तु अकसमात् मुक्ति-श्री के अभिलाषी बाहुबली ने बीच में ही मोह, ममता छोड़ भरत से कहा—

"हे राजेन्द्र ! मेरे पर्वत रूपी इस अभेद्य शरीर पर तुमने चक्ररत्न का प्रयोग किया किन्तु वह निष्फल हुआ। सब भाईयों को तुमने अपने व्यवहार से मुनि-दीक्षा के लिए बाध्य किया, इस प्रकार तुम अकेले ही पिता के दिये इस राज्य को भोगना चाहते हो। आदि ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र चक्रेश्वर भरत, कुलोद्धारक तुमने धर्म और कीर्ति को जीत लिया। पापमय राज्यश्री दूसरों को भोग्य नहीं, केवल भरत का ही शाश्वत भोग्य है, ऐसा तुम समझ बैठे हो तो यह लो, तुम्हारी चाही अविचारित रमणीय राज्यश्री और विपाककटु साम्राज्य। आयुष्मान, निष्कंटक तपोलक्ष्मी का इच्छुक मैं, इस विषकंटक सदृश्य राज्यलक्ष्मी को त्यागता हूं। यदि किसी कारण अविनय में मैंने ऐसा कुछ कह दिया हो जो अनुचित हो तो हे चक्रवर्ती उसे क्षमा करना।" ऐसा कहकर युद्ध और नश्वर राज्य-लक्ष्मी से विरक्त बाहुबली सम्पूर्ण राज-पाट छोड़ घोर तपस्या के लिए वन-गमन के लिए प्रस्तुत हुए।

यह देख बज्र के समान कठोर हृदय भरत भी पिघल गये। उन्हें अपने व्यवहार पर ध्यान आया। भरत ने बाहुबली को वक्ष से लगा लिया और कहा—"तुम वन गमन न करो।" फिर भरत बाहुबली के चरणों में गिर गया और सच्चे हृदय से उसे एक बार चक्रवतित्व प्राप्त करने पर दुःख होने लगा। किन्तु बाहुबली के हृदय में उस घटना से सहज वात्सल्य उमड़ पड़ा, सजल-नयन भरत का अभि-

षेक करने लगे और दोनों भाईयों के अश्रु मिल गये। भरत की यह दूसरी हार थी—युद्ध की हार से भरत शारीरिक बल से हारे किन्तु बाहुबली के अपूर्व त्याग से भी वह पराप्त हो गये। यह थी राज्य-लक्ष्मी पर तप-लक्ष्मी की विजय।

बाहुबली अपने पिता भगवान ऋषभदेव के पास कैलाश पर्वत पर पहुंचे। पिता से उन्होंने मुनि-दीक्षा ग्रहण की और कठोर तप में लीन हो गये। वे भूख, प्यास आदि २२ परीषहों को सहन करने लगे। आहारादि चतुसंज्ञाओं का नाश किया। पंच महाव्रतों, षडावश्यक क्रियाओं, ईर्प्या समित्यादि पंच समितियों, मनो गुप्तआदि त्रिगुप्तियों और उत्तम क्षमादि दस धर्मों का पालन किया और एक वर्ष की इस निराहार कठोर तपस्या से प्रकृति मुग्ध हो गई। उनके शरीर के चारों ओर वृक्ष और लताएं चढ़ गई। पैरों और बाहुओं में माधवी लता माधव समझ कर लिपट गई। माधव (अर्थात् मा-लक्ष्मी, ध-पति, मोक्ष लक्ष्मी के पति) चरणों के आस-पास कीड़े-मकोड़ों ने बांबियां बना ली तो भी बाहुबली अपनी अन्तःदृष्टि से अविरत,अविचल खड़े ही रहे। इतनी कठोर तपस्या और उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त न हुआ। दर्शनार्थियों ने इसकी सूचना भरत को दी। जब भरत को यह समाचार मिला तो वे कैलाश पर अपने पिता भगवान ऋषभदेव के पास पहुंचे और उनसे यह शंका प्रकट की तो आदिनाथ स्वामी बोले कि बाहुबली के मन में एक शल्य है जो निकल नहीं पा रहा है और जिसके बिना निकले उसकी अन्तःदृष्टि शुद्ध होकर केवल ज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा। तो भरत ने पूछा कि महाराज ! वह शल्य क्या है ? इस पर आदिनाथ ने उत्तर दिया—

"बाहुबली के मन में यह शल्य है कि वह भरत की भूमि पर खड़ा है। इसलिए कठोर तपस्या के बाद भी केवल ज्ञान प्राप्त नहीं

हुआ। भरत ! तुम जाओ और उसके इस शल्य को निकाल दो।'

वसुधा काहू की न भई

राजेन्द्र भरत तब बाहुबली जहां तपस्या-रत थे, वहां पहुंचे और उनका कान साफ करके उसमें कहा—"हे मुनीश्वर, कोई भी भूमि किसी की नहीं होती तो फिर जहां आप तपस्या कर रहे हैं, यह भूमि मेरी कैसे हो सकती है ? यह राज्य एक वैश्या के समान है। इसे हमारे जैसे हजारों राजा-महाराओं ने भोगा है। इसलिए आप अपने चित्त की शुद्धि कीजिए।" इतना सुनते ही बाहुबली के हृदय में निर्मलता छा गई और अवशिष्ट मोह नष्ट होने से घातिया कर्मों से मुक्ति हुई और केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। अनेक राजा-महाराजा और देवताओं ने भरत के साथ उनकी पूजा-आराधना की। अनन्तर देवताओं की रचित गंध कुटी में चिरकाल तक विहार कर मोक्ष पधारे और भरतेश्वर ने जिनके नाम पर यह भारत देश सुविख्यात है, चिरकाल तक राज्य किया। भगवान बाहुबली के मोक्षगामी होने पर भरतेश्वर ने उनकी स्मृति में ५२५ धनुषाकार पन्ना की एक मूर्ति का निर्माण करा कर पोदनपुर में उसकी स्थापना की।

राजस्थान के संबंध में लिखने वाले ले० कर्नल टाड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "ट्रैवल्स इन वैस्टर्न इण्डिया" में पृष्ठ ७८ पर इन्हीं भगवान बाहुबली के सँबंध में बड़ी खोजपूर्ण बातें लिखी हैं। बाहुबली की एक मूर्ति के संबंध में उन्होंने लिखा है :

आदिनाथ के दो पुत्र भरत और बाहुबली थे। बाहुबली का राज्य मक्का तक था जिसे बली-देस कहा जाता था। वहाँ (मक्का) से उनकी एक मूर्ति विक्रमादित्य के एक सौ वर्ष पर्यन्त जावर साह लाये थे और उसे शत्रुंजय पर्वतमाला पर स्थापित किया था। फिर उसे

गोगो ले जाया गया। यहां पर यह गोहिलों द्वारा अपनी राजधानी भावनगर ले जाने तक रही और अब यह भावनगर में विद्यमान है। बाहुबली के नाम से चन्द्रवंश और उनके बड़े भाई भरत के नाम से सूर्यवंश चला। इसका उल्लेख शत्रुंजय महात्म्य में मिलता है। इस ग्रन्थ की रचना वल्लभी नगर में सं० ४७७ (४२१ ईस्वी) में धुनेश्वर सूर आचार्य ने सूर्यवंशी नरेश राजा शिलादित्य के शासन काल में की थी। इसी नरेश ने आदिनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार किया था।"

चामुण्डराय

वीर चामुण्डराय का जन्म ब्रह्म क्षत्रिय वंश में हुआ था।(दृष्टव्य त्रिष्टिी लक्षण महापुराण, ५-५, विन्ध्य गिरि का २८१ वां शिलालेख)। इनके पिता का नाम महाबलय्या और माता का नाम काललादेवी था। इनकी धर्मपत्नी का नाम अजितादेवी और पुत्र का नाम जिनदेव था। इनके पिता और पितामह गंगवंशी राजा के विशेष कृपा पात्र और समादरणीय सरदार थे। इनके जीवन का अधिकांश समय गंगों की राजधानी तलक्काड़ में व्यतीत हुआ। उस समय गंगनरेश राचमल्ल (चतुर्थ) थे जिनके आश्रय में चामुण्डराय का राजकीय जीवन व्यतीत हुआ। इनके गुरु थे आचार्य अजितसेन। गंगवंश के नरेश मारसिंह भी बड़े प्रतापी राजा थे, इन्हीं के पुत्र थे राचमल्ल। चामुण्डराय क्षत्रिय वंश की परम्परा के अनुसार बड़े देश-भक्त और राजभक्त थे। प्रारम्भ में वे मात्र एक सरदार थे, किन्तु प्रशासन के अपने गुणों के कारण वे धीरे-धीरे उन्नति करते हुए प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुए। इसके साथ ही वे एक वीर योद्धा भी थे और इस प्रकार वे प्रधान सेनापति भी बन गये थे। वे शस्त्र और शास्त्र दोनों में निपुण थे। सिद्धान्त-चक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने वीर चामुण्डराय के गुणों की भूरि-

भूरि प्रशंसा की है। इसके मंत्रित्व काल में गंग राज्य की अत्यधिक उन्नति हुई।

चामुण्डराय वीर योद्धा और कुशल प्रशासक तो थे ही, वे कन्नड़, संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के अच्छे विद्वान और कवि भी थे। उन का लिखा हुआ 'त्रिषष्टि लक्षण महापुराण' (चामुण्डराय पुराण) कन्नड़ गद्य साहित्य का आदि ग्रन्थ माना जाता है। उन्होंने और कितने ग्रन्थ लिखे इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता। चामुण्डाय स्वयं विद्वान थे, साथ ही विद्वान का आदर भी करते थे। कवि चक्रवर्ती, कवि रत्नत्रयी में अन्यतम महाकवि रन्न अपनी विद्या-पूर्ति के लिए आश्रयदाता की खोज में थे। घूमते-फिरते जब वे गंगराज की राजधानी तलक्काड़ में पहुंचे तो चामुण्डराय ने उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर अपने यहां आश्रय दिया और अध्ययन के लिए पूर्ण व्यवस्था कर दी। चन्द्रगिरि पर्वत पर कवि रन्न के वहां जाने और शिलाखंड पर हस्ताक्षर करने के प्रमाण आज भी विद्यमान हैं जिन्हें कोई भी देख सकता है।

चामुण्डराय के समय में दक्षिण भारत के जैन भक्त, गंगराज अन्य धर्मावलम्बी राजाओं के घेरे में आ चुके थे। एक ओर से नीलुबों की चढ़ाई होती रही तो दूसरी ओर चालुक्यों के उपद्रव जारी रहे। इनके अतिरिक्त कज्जलों का आक्रमण भी प्रायः होता रहता था। इन सब को वीर चामुण्डराय ने अपने पराक्रम और रण-कौशल से परास्त किया। सचमुच वीर चामुण्डराय का जीवन एक वीर जैन शासक का जीवन था जो अहिंसा और शांति की रक्षा के लिये दुष्ट शत्रुओं का दमन करने में किंचित भी संकोच नहीं करते थे। चामुण्डराय ने १० वीं शताब्दी में ही यह प्रमाणित कर दिया था कि जैनों की अहिंसा, कायरों की अहिंसा नहीं है। ऐसी अहिंसा जो दुष्टों के दमन से विरत रहकर हिंसा और लूट-पाट का मार्ग प्रशस्त करती है। वीरों की अहिंसा प्राणी-

मात्र की रक्षा करती है और 'जीओ और जीने दो' की शिक्षा देती है।

अपने शौर्य और वीरतापूर्ण विजयों के कारण चामुण्डराय को अपने समय में अनेक उपाधियां प्राप्त हुई यथा:—

१. उच्चाग के दुर्ग को जीतने के बाद उन्हें 'रणरंगसिंह' की उपाधि से विभूषित किया गया।

२. गोन्नूर मैदान में नांकुवों को पराम्त करने के बाद 'वीर मार्तण्ड' उपाधि धारी हुये।

३. बागेयूर दुर्ग में त्रिभुवन वीर को मारकर 'वीर-कुल-काल दण्ड' कहलाये।

४. खेड़क के युद्ध में बज्जल को पराम्त करने से 'समर धुरन्धर' का नाम पाया।

५. कामराजा के दुर्ग में कुणांक को मारकर 'भुज विक्रम' की उपाधि धारण की।

६. नागवर्मा का बध करने वाले मुदुराच्यय को जीत कर 'समर परशुराम' की उपाधि से विभूपित किए गये।

इनके अतिरिक्त 'प्रतिपक्ष राक्षस', 'भट्मारि', 'समर केसरी' 'समर चूड़ामणि', 'अति प्रचण्ड', 'महा प्रचण्ड' आदि अनेक उपाधियों से भी उन्हें विभूषित किया गया था। इतिहास बतलाता है कि जितने युद्ध उन्होंने लड़े, सभी में विजयी हुये।

ऐसे वीर शिरोमणि के लिए यह स्वाभाविक ही है कि उसका अन्तिम जीवन भक्ति और धर्म की आराधना में बीते। उनके जीवन के अन्तिम वर्ष सम्यक्त्व की रक्षा और आचार्य चरणों की शरण में उनकी सेवा और वैय्या-वृत्ति करते हुए बीता। महान ग्रन्थ 'गोम्मटसार' के प्रणेता नेमिचन्द्र आचार्य ने उन्हें अजितसेन का शिष्य बतलाया है (गोम्मटसार गाथा ७३३-जीवकाण्ड) किन्तु कन्नड़ कवि चिदानन्द ने

अपने 'मुनिवंशाभ्युदय काव्य' में इनको आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती का शिष्य बतलाया है। सच्चाई यह है कि वे और उनका परिवार इन दोनों आचार्यों के शिष्य रहे थे। बतलाया जाता है कि नेमिचन्द्र आचार्य के परामर्श और उपदेश से ही भक्त चामुण्डराय ने विश्वविख्यात बाहुबली की मूर्ति की स्थापना और प्राण प्रतिष्ठा की। जब तक यह त्यागमय, वैराग्यमय, कल्याणमय कलापूर्ण विशाल प्रतिमा विन्ध्यगिरि पर विराजित है, तब तक भक्त चामुण्डराय की धवल कीर्ति अविच्छिन्न रूप से दिग्दिगन्त में फहराती रहेगी और भारतवर्ष ही नहीं; संसार की मूर्ति कला के इतिहास में बाहुबली और चामुण्ड राय का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

चामुण्डराय की धार्मिक उदारता के कारण भी उन्हें अनेक उपाधियों से विभूषित किया गया। वे 'सम्यक्त्व रत्नाकर', 'सम्यक्त्व चूड़ामणि' 'गुणवंकाव', 'शौचाभरण', 'सत्य युधिष्ठर', 'भुजबलि भक्त' आदि नामों से जाने जाते हैं। अत्यधिक जनप्रिय और लोकप्रिय होने के कारण उन्हें कन्नड़ भाषा में 'अय्या' या 'अण्णा' के सम्मानित नाम से भी लोग पुकारते हैं।

चन्द्रगिरि

विन्ध्यगिरि अथवा इन्द्रगिरि के उत्तर की ओर श्रवण बेलगोला गांव के सन्निकट चन्द्रगिरि पहाड़ी है। विन्ध्यगिरि पर्वत पर भगवान बाहुबली की प्रतिमा के दर्शन करने के उपरान्त दर्शक चन्द्रगिरि पर्वत पर बड़े उत्साह के साथ जाते हैं। इस पर्वत पर आचार्य भद्रबाहु स्वामी और सम्राट चन्द्रगुप्त की समाधि-भूमि है। सम्राट चन्द्रगुप्त को दीक्षा के बाद विशाखाचार्य भी कहा गया है। इस पर्वत पर चढ़ने के लिए भी चिकने पत्थरों को काट कर सीढ़ियां बनायी गई हैं। ये

२०० के लगभग हैं। चन्द्रगिरि पहाड़ी समुद्र तल से ३०५२ फुट और भूतल से १७५ फुट ऊपर है। इस प्रकार यह विन्ध्यगिरि पहाड़ी से ऊंचाई में कुछ छोटी है। किन्तु है उसके ठीक सामने। विभिन्न शिला-लेखों में इसके कई नाम पाये जाते हैं—'कटवप्र', 'कलवप्पु', 'ऋषि-गिरि', 'तीर्थगिरि', आदि। किन्तु चन्द्रगिरि नाम सबसे अधिक प्रच-लित है और आज कल इसी नाम से पुकारा जाता है।

जैनों के प्रथम केवली भगवान बाहुबली की विशालकाय खड्गासन मूर्ति के कारण उनका स्थान विन्ध्यागिरि है तो जैनों के अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु की समाधि-गुफा तथा चन्द्रगुप्त बस्ती (मन्दिर) में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के यहां आने और मुनि दीक्षा लेने के बाद १२ वर्ष तक घोर तप करने आदि के प्रामाणिक शिलालेख इस चन्द्रगिरि पर्वत पर विद्यमान हैं। इस प्रकार जहां तक इतिहास का संबंध है, श्रुतकेवली भद्रबाहु और सम्राट चन्द्रगुप्त के कारण चन्द्र-गिरि अधिक महत्वपूर्ण है। जबकि धर्म, अध्यात्म, और दर्शन की अपेक्षा विन्ध्यगिरि वन्दनीय है। चन्द्रगिरि की ऐतिहासिकता विन्ध्य-गिरि से डेढ़ हजार वर्ष पुरानी है।

इस पर्वतमाला पर अनेक दर्शनीय ऐतिहासिक स्थल हैं।

कूगे ब्रह्मदेव स्तम्भ

चन्द्रगिरि के प्रवेश द्वार के पास एक स्तम्भ है जिसे कूगे ब्रह्मदेव स्तम्भ कहा जाता है। इसके उत्तरपूर्व की ओर मुख करके ब्रह्मदेव की छोटी सी पद्मासन मूर्ति है। स्तम्भ लेख नं० ३८,५६ से ज्ञात होता है कि यह स्तम्भ गंग नरेश मारसिंह (द्वितीय) की मृत्यु का स्मारक है। इस गंग नरेश की मृत्यु ९७४ में हुई थी।

शांतिनाथ बस्ती (मन्दिर)

जैन तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ का मन्दिर है। इसमें भगवान शांतिनाथ की खड्गासन मूर्ति विराजमान है। यह ११ फुट ऊंची है और अत्यन्त सुन्दर है। चन्द्रगिरि के मुख्य द्वार से प्रवेश कर बांयी ओर घूम कर जैसे ही आगे बढ़ते हैं, यह सबसे पहला मन्दिर है। एक किंवदन्ती के अनुसार यह मूर्ति रामायण काल की है। कहा जाता है कि पुरुषोत्तम राम के दल के यहां विश्राम करने के समय मन्दोदरी ने इसकी प्रतिष्ठा की थी। यह बीसवें जैन तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ का समय था।

महानवमी मंडप

शांतिनाथ मन्दिर के उत्तर में महानवमी मंडप स्थित है। यहां एक शिला पर दो मंडप बने है, इनकी बनावट सुन्दर और शिखर दर्शनीय है। शिलालेख नं० ३३,८२ में नयकीर्ति आचार्य का समाधि-मरण वर्णित है। ऐसा लगता है कि यह आचार्य की समाधि के स्मारक स्वरूप बनाया गया होगा। इसका निर्माण उनके शिष्य नागदेव द्वारा हुआ ज्ञात होता है।

भरतेश्वर

महानवमी मंडप के पश्चिम की ओर नौ फुट ऊंची भगवान बाहुबली के अग्रज भरत चक्रवर्ती की मूर्ति है। मूर्ति एक शिला को काटकर घुटनों तक ही बन पाई है, ऐसा लगता है इसे अपूर्ण छोड़ दिया गया है। भरतेश्वर की इस मूर्ति के संबंध में नवीं सदी के शिलालेख नं० २५,६१ से ज्ञात होता है कि यह अरिष्टनेमि की बनाई हुई है। इसी से यह कल्पना होती है कि सामने विन्ध्यगिरि पर भगवान बाहु-

बली की मूर्ति का निर्माता भी सम्भवतः अरिष्टनेमि ही रहा होगा।

सुपार्श्वनाथ बस्ती (मन्दिर)

निकट ही जो मन्दिर है, उसमें जैनों के २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की तीन फुट ऊंची मूर्ति स्थापित है। इस मूर्ति के सिर के ऊपर पंचफण नाग की छाया है। मूर्ति कलामय है।

चन्द्रप्रभु बस्ती (मन्दिर)

पार्श्वनाथ बस्ती के निकट ही चन्द्रप्रभु मन्दिर में तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभु की ३ फुट ऊंची मूर्ति है। सुखनासी में गोमेद यक्ष और कूष्माण्डिनी यक्षिणी की मूर्तियां विराजमान हैं। मन्दिर के सामने ही एक शिलालेख है जिससे ज्ञात होता है कि यह मन्दिर श्री पुरुष के पुत्र गंगराज (द्वितीय) शिवमार के द्वारा सन् ८०० में निर्माण कराया गया था।

चामुण्डराय बस्ती (मन्दिर)

चन्द्रगिरि पर्वत पर शिल्प कला की दृष्टि से चामुण्डराय मन्दिर सबसे अधिक सुन्दर और विशाल है। इस मन्दिर में तीर्थंकर नेमिनाथ की पांच फुट ऊंची प्रतिमा विराजमान है। गर्भगृह के द्वार पर दोनों ओर सर्वाह्ण यक्ष और कूष्माण्डिनी यक्षिणी की मूर्तियां हैं। बाहर की दीवारों पर अनेक प्रतिमाएं और भी हैं। बाहरी द्वार के नीचे की ओर "श्री चामुण्डराय माडिसिद" लेख अंकित है जिसका क्रमांक २२३ है। इस मन्दिर की प्राचीनता तथा वास्तुकला से यह सिद्ध होता है कि इसका निर्माण चामुण्डराय ने १००० वर्ष पूर्व किया था। ऊपर के खण्ड में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति है। शिलालेख क्रमांक ६७ से

ज्ञात होता है कि इस दूसरे खण्ड का निर्माण चामुण्डराय के पुत्र जिनदेव ने कराया था। इस मन्दिर का महत्व और ऐतिहासिकता इस कारण अत्यन्त बढ़ जाती है कि आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने इस मन्दिर में बैठकर जैनों के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ "गोम्मटसार" आदि की रचना की थी। वह स्थान जहां नेमिचन्द्राचार्य ने बैठकर ग्रन्थ का निर्माण किया था, आज भी वन्दनीय है। चामुण्डराय का नाम गोम्मट भी कहा गया है। इसलिए गोम्मट-चामुण्डराय के मन्दिर में गोम्मट के हेतु सिद्धान्त शास्त्रों का निचोड़ गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना की गई (गोम्मटसार कर्मकाण्ड गाथा-९६८)।

एरडु कट्टे बस्ती (मन्दिर)

निकट ही बने इस मन्दिर का नाम एरडु कट्टे बस्ती है। कन्नड़ भाषा के इस शब्द का हिन्दी में अर्थ है "उभय वेदिका मन्दिर"। इस मन्दिर के दोनों ओर चबूतरे हैं और बीच में सीढ़ियां हैं। सम्भवतः इसका यह नाम इसीलिए पड़ा होगा। इस मन्दिर में भगवान आदिनाथ की पांच फुट ऊंची प्रभावली युक्त मूर्ति विराजमान है। मुख्य मंडप पर यक्ष और यक्षिणी की मूर्तियां हैं। शिलालेख ६३ से ज्ञात होता है कि गंगराज सेनापति की पत्नी लक्ष्मीदेवी ने इसका निर्माण कराया था।

सवति गंधवारण बस्ती (मन्दिर)

पास के मन्दिर का नाम है सवति गंधवारण बस्ती। इसका निर्माण सुप्रसिद्ध होयसल नरेश विष्णुवर्धन की रानी शान्तलादेवी ने कराया था। उसका उपनाम सवति गंध वारण था। इसीलिए मन्दिर को उस नाम से पुकारते हैं। इस मन्दिर में तीर्थंकर शांतिनाथ की

प्रभावली युक्त पांच फुट ऊंची मूर्ति विराजमान है। मुख्य मंडप में यक्ष और यक्षिणी की मूर्तियां हैं। शिलालेख संख्या ५६,६२ से ज्ञात होता है कि यह शक सम्वत् १०४४ में बनाया गया था। उस क्षेत्र में रानी शान्तलादेवी द्वारा निर्मित और भी कई प्रसिद्ध मन्दिर मिलते हैं।

तेरिन बस्ती (मन्दिर)

कन्नड़ में रथ को तेरु कहते हैं। यह मन्दिर एक रथ के आकार का ही बनाया गया है, इसलिए इसे तेरिन बस्ती कहते हैं। इस मन्दिर में पांच फुट ऊंची भगवान बाहुबली की मूर्ति है। शक सम्वत् १०३६ में स्थापित शिलालेख क्रमांक १३७ से ज्ञात होता है कि इस मन्दिर का निर्माण होयसल राजश्रेष्ठि की माता माचिकब्बे और नेमिसेठ की माता शान्तिकब्बे ने कराया था।

शान्तीश्वर बस्ती (मन्दिर)

यह शान्तीश्वर मन्दिर भी होयसल शैली में निर्मित है। गर्भ-गृह में तीर्थंकर शांतिनाथ की चार फुट ऊंची प्रतिमा है। मुख्य मंडप में यक्ष और यक्षिणी की मूर्तियां हैं। मन्दिर पर शिखर है, जिस पर सुन्दर कारीगरी है।

मज्जिगण्ण बस्ती (मन्दिर)

निकट का मन्दिर मज्जिगण्ण बस्ती कहलाता है। यह तीर्थंकर अनन्तनाथ का मन्दिर है। इसमें भगवान अनन्तनाथ की साढ़े तीन फुट ऊंची कलामय मूर्ति स्थापित है। नाम से ऐसा ज्ञात होता है कि मज्जिगण्ण नामक किसी व्यक्ति ने इसका निर्माण कराया होगा। कोई

शिलालेख न होने के कारण इसके निर्माण के निश्चित समय का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

शासन बस्ती (मन्दिर)

इस मन्दिर के द्वार पर एक शासन (क्रमांक ५६) है, इस कारण इसका नाम शासन मन्दिर पड़ा होगा। गर्भ-गृह में तीर्थंकर आदिनाथ की पांच फुट ऊंची प्रतिमा है। मुख्य मंडप में यक्ष गोमेद और यक्षिणी कूष्माण्डिनी की प्रतिमाएं हैं। शिलालेख क्रमांक ६४ से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण सेनापति गंगराज ने कराया था। द्वार पर के लेख से स्पष्ट है कि गंगराज ने फागुन शुक्ल पंचमी शक सम्वत् १०३२ को मन्दिर के अर्थ 'परम' नामक ग्राम दान में दिया था।

कत्तले बस्ती (मन्दिर)

निकट का जो बड़ा मन्दिर है, उसी का नाम कत्तले बस्ती है। इस मन्दिर में प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ की छह फुट ऊंची पद्मासन मूर्ति है जो अत्यन्त भव्य है। मन्दिर अपेक्षाकृत बड़ा है। इसके गर्भ-गृह में प्रदक्षिणा करने की सुविधा है। सामने के द्वार के अतिरिक्त इस विशाल मन्दिर में कोई खिड़की या दरवाजा नहीं है। इसलिए इसे कत्तले बस्ती कहते हैं। कन्नड़ में कत्तले का अर्थ होता है—अन्धकार। इसलिए इसका अर्थ हुआ अंधेरा मन्दिर।

चन्द्रगुप्त बस्ती (मन्दिर)

कैसी विडम्बना है कि जिसके महान नाम से यह पहाड़ी चन्द्रगिरि कहलायी, और जिसके नाम पर यह चन्द्रगुप्त मन्दिर पर्वत पर निर्मित हुआ, वह सभी मन्दिरों में सबसे छोटा है। इसमें तीर्थंकर

पार्श्वनाथ की मूर्ति है। इसमें तीन गर्भ-गृह हैं। दाहिनी ओर कूष्माण्डिनी और बांयी ओर पद्मावतीदेवी की मूर्तियां हैं। मुख्य मंडप में धरणेन्द्र और सर्वाह्ण यक्ष की मूर्तियां हैं। मुख्य मंडप की दीवार पर श्रुत-केवली भद्रबाहु और सम्राट चन्द्रगुप्त के जीवन-वृत्त का कुछ भाग भी उत्कीर्ण है। कसौटी पत्थर में इन चित्रों में गोवर्धनाचार्य द्वारा बालक भद्रबाहु को शिष्य बनाने सम्बन्धी कथा तथा चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्न भी उत्कीर्ण हैं। ये बड़े ही प्रभावोत्पादक हैं। इनका तो अलग से एक चित्र एल्बम तैयार हो जाय तो बहुत ही सुन्दर हो।

पार्श्वनाथ बस्ती (मन्दिर)

पास का पार्श्वनाथ मन्दिर सुन्दर और विशाल है। इसका द्वार भी बड़ा है। इसमें सप्तफण नाग की छाया के नीचे भगवान पार्श्वनाथ की १२ फुट ऊंची कायोत्सर्ग मूर्ति है। चन्द्रगिरि पर्वत पर सबसे बड़ी मूर्ति यही है। मन्दिर के सामने सुन्दर मान-स्तम्भ है। मान-स्तम्भ के ऊपर तीर्थंकर की मूर्ति है। मान-स्तम्भ से चारों ओर नीचे यक्ष और यक्षिणियों की मूर्तियां हैं। नीचे ब्रह्मदेव और अम्बिका-कूष्माण्डिनी-देवी की मूर्तियां हैं।

इरवे ब्रह्मदेव मन्दिर (मन्दिर)

यह मन्दिर परकोटे के बाहर उत्तर दिशा में प्रतिष्ठित है। जैसा कि नाम से ही प्रकट है, इसमें ब्रह्मदेव की मूर्ति है। इसके आगे एक बृहत् चट्टान पर अन्य जैन मूर्तियां विद्यमान हैं। हाथी, घोड़े आदि जीव भी उत्कीर्ण हैं। शिलालेख संख्या २३५ के अनुसार यह मन्दिर १०वीं शताब्दी का निर्मित है। कन्नड़ शब्द इरवे का अर्थ होता है— चींटी। नगर में जनश्रुति और विश्वास है कि ब्रह्मदेव की मनौती से

घर पर चींटियों का उपद्रव नहीं होता। भट्टारकजी से बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि कुछ समय पहले श्रवणबेलगोल नगरी में एक व्यक्ति के घर में चींटियों का उपद्रव हुआ। घरवालों ने प्रारम्भ में उसकी उपेक्षा की किन्तु १५ दिनों के बाद वर्षा होने को थी और वर्षा ऋतु में बिना घर में रहे काम कैसे चलता ? इसलिए घरवालों को चिन्ता हुई। अतः वे ब्रह्मदेव के मन्दिर में गये। वहां की परम्परा के अनुसार ब्रह्मदेव की दही से पूजा-अर्चना की गयी। जैसे ही घरवाले चन्द्रगिरि से लौटकर घर पहुंचे तो देखा कि वहां चींटियों का नाम-निशान भी न था। इस प्रकार ब्रह्मदेव की मनौती से घर पर इरुवे अर्थात्— चींटियों का उपद्रव नहीं होता। यदि हो भी जाये तो इरुवे ब्रह्मदेव की पूजा-अर्चना करने पर वह शान्त हो जाता है। इसलिए इसको इरुवे ब्रह्मदेव मन्दिर कहा जाता है। विश्वास से फल मिलता है, यह उक्ति यहां चरितार्थ होती है।

कंचिन दोणे

इरुवे ब्रह्मदेव मन्दिर से बांयी दिशा में यह कुण्ड है। कन्नड के 'दोणे' शब्द का अर्थ होता है—'प्राकृतिक कुण्ड' और 'कंचिन' का मतलब है कांसा (धातु)। एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि कदम्ब ने तीन पत्थर मंगाये। उनमें एक तो टूट गया और दो रह गये। शिलालेख के ही अनुसार मानभ ने इस कुण्ड की रचना आनन्द संवत्सर में करायी थी।

लक्कि दोणे

यह भी एक कुण्ड है। ऐसा लगता है कि लक्कि नामक किसी श्राविका ने इसे बनवाया होगा। इस संबंधी शिलालेख में जैन आचार्य

और कवियों का सुन्दर वर्णन दिया हुआ है ।

भद्रबाहु गुफा

परकोटे के प्रवेश द्वार के दाहिनी ओर कुछ दूर चलने पर अन्तिम श्रुतिकेवली आचार्य भद्रबाहु के चरण बने हैं। श्रुतिकेवली भद्रबाहु स्वामी इसी गुफा में तपश्चर्या करते थे और उनका समाधिमरण भी यहीं हुआ होगा। उनकी वैय्यावृत्ति में लगे सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य मुनि विशाखाचार्य के रूप में यही उनकी सेवा सुश्रुषा करते रहे क्योंकि आचार्य भद्रबाहु की समाधि के समय विशाखाचार्य के अलावा और कोई शिष्य वहां विद्यमान नहीं था। गुफा के अन्दर इन चरणों की पूजा होती है। बहुत से जैन-जैनेतर नर-नारी, यह विश्वास रखते हैं कि भद्रबाहु गुफा के भीतर चरणों का ४८ दिन पूजन करने से हर कार्य सिद्ध हो जाता है। गिनती के लिए गुफा के भीतर पत्थर पर भक्त लोग बिन्दियां लगा जाते हैं, जो हर समय वहां दिखायी पड़ती हैं। यह गुफा अत्यंत प्राचीन मालूम पड़ती है। और ऐसा लगता है कि पीछे की ओर से छत के शिलाखण्ड नीचे आते जा रहे हैं। अत: उसमें खड़े होने का तो प्रश्न ही नहीं रह गया है।

इस पर्वत पर शिखर की सबसे ऊंची शिला पर भद्रबाहु बैठकर तपस्या किया करते थे। यहां उस शिला पर उनके चरण बने हैं। आज भी यदि उस पर कोई बैठे तो वहां इतनी तेज हवा चलती है और हर ऋतु में उस पर वेगमय वातावरण रहता है जो परम तपस्वी ही झेल सकता है। उसी शिला के निकट ऊपर की ओर एक शिला पर आचार्य भद्रबाहु के शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य (मुनि विशाखाचार्य) ध्यान में लीन रहा करते थे। इन दोनों शिलाओं पर चरण-चिह्न बने हुए हैं। वहां जाकर व्यक्ति रोमांचित हो जाता है और उसी काल में पहुंच जाता

है जब आचार्य भद्रबाहु और मुनि विशाखाचार्य यहां रहे होंगे।

चामुण्डराय गुण्डु

चन्द्रगिरि पर्वत पर चढ़ते हुए बीच में मार्ग में एक चट्टान है। कहा जाता है कि चामुण्डराय ने इसी स्थान पर खड़े होकर उत्तर की ओर बाण चलाया था, जो विन्ध्यगिरि पर जाकर गिरा और उसी शिलाखंड पर भगवान राम द्वारा आरेखित भगवान बाहुबली की मूर्ति के दर्शन हुए और बाद को उस अखंड शिला को छेनी से छील-छील कर भगवान बाहुबली की विशाल प्रतिमा का निर्माण हुआ। उसी स्थान पर खड़े होते ही दर्शक को एक विचित्र-सी अनुभूति होती है। इस शिलाखंड पर गुरु के चरण-चिह्न भी बने हैं और उसी शिला पर और पीछे की खड़ी शिला पर रेखाचित्र अंकित हैं।

चन्द्रगिरि पर आज भी चन्दन के पेड़ बहुत अधिक नहीं, फिर भी काफी हैं। दर्शक उनके नीचे खड़े होकर शीतलता का अनुभव करते हैं। इस ऐतिहासिक पहाड़ी का यह भी एक अतिरिक्त आकर्षण है।

श्रवणबेलगोल नगरी के अन्य दर्शनीय स्थल

भण्डार बस्ती

भण्डार मन्दिर श्री जैन मठ के सामने है। यह विशाल मन्दिर श्रवण बेलगोल का सबसे बड़ा मन्दिर है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई २६६ × ७८ फुट है। इसमें एक गर्भ-गृह और तीन द्वार हैं। २४ तीर्थंकरों की तीन-तीन फुट ऊंचाई की सुन्दर मूर्तियां एक ही वेदी पर प्रतिष्ठित हैं। होयसल नरेश के भण्डारी (कोषाध्यक्ष) हुल्ल ने इसका निर्माण कराया था। इसीलिए इसका नाम भण्डार अथवा भण्डारी बस्ती पड़ा। मुखनासी में पद्मावती और ब्रह्मदेव की मूर्तियां हैं। नवरंग के चार खम्भों के बीच भूमि पर १० फुट का एक चौकोर पत्थर बिछा हुआ है। नवरंग की चित्रकारी बहुत सुन्दर है। गर्भगृह के प्रवेश द्वार के ऊपर इन्द्र-नृत्य की कलामय मूर्तियां हैं। मन्दिर के चारों ओर परकोटा बना है। यह काफी ऊंचा है। लगभग ३० फुट ऊंचाई है। यहां पर भी शिलालेख हैं, जैसा कि कर्नाटक के प्रायः सभी मन्दिरों में शिलालेख की परम्परा है। शिलालेख नं० १३७-१३८ से ज्ञात होता है कि यह मन्दिर शक सम्वत् १०८१ में बनवाया गया

था। राजा नरसिंह ने इसे 'भव्य चूड़ामणि' का नाम दिया था और इसके संरक्षण के लिए 'सवणेरु' नाम गांव दान में दिया था। मन्दिर के सामने मान-स्तम्भ है और पाण्डुकशिला मन्दिर भी है।

अक्कन बस्ती

श्रवण बेलगोल नगरी का यह अत्यन्त कलापूर्ण मन्दिर है जिसका नाम है अक्कन बस्ती। यह होयसल शिल्पकला का सुन्दर नमूना है। इसमें गर्भगृह प्रभावली, सुखनासी, नवरंग और मुख्य मंडप है। गर्भ-गृह में सप्तफणि तीर्थंकर पार्श्वनाथ की पांच फुट ऊंची भव्य मूर्ति है। प्रभावली में २४ तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं। सुखनासी में दोनों ओर एक-दूसरे के सम्मुख साढ़े तीन फुट ऊंची पंचफणी धरेणन्द्र यक्ष और पद्मावती यक्षिणी की कलामय मूर्तियां हैं। नवरंग के काले पाषाण के खम्भे अत्यन्त चमकीले हैं। यह कसौटी पत्थर के बने हुए हैं। नवरंग की छत बहुत ही सुन्दर है। शिखर की रचना महामेरु के आधार पर की गई है। शिलालेख नं० १२४ के अनुसार होयसल नरेश बल्लाल (द्वितीय) के ब्राह्मण मंत्री चन्द्रमौलि की धर्मपत्नी आच्चियक्क ने शक सम्वत् ११०३ में इसका निर्माण कराया था। उसकी पत्नी के नाम के कारण ही इसे अक्कन बस्ती कहते हैं।

सिद्धान्त बस्ती

अक्कन बस्ती के पश्चिम की ओर सिद्धान्त मन्दिर में जैनों के महान सिद्धान्त ग्रन्थ धवला, जय धवला, महाधवला, भूवलय आदि रखे जाते थे। इसी से इसका नाम सिद्धान्त मन्दिर पड़ा है। कहा जाता है, इस मन्दिर के वे सिद्धान्त ग्रन्थ आजकल मूडबिद्री के शास्त्र भण्डार

में सुरक्षित हैं । इस सिद्धान्त मन्दिर में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित है ।

दानशाले बस्ती

अक्कन बस्ती के समीप ही दानशाले मन्दिर है। इसमें पंच-परमेष्ठी भगवान की तीन फुट ऊंची मूर्ति विराजमान है। 'मुनि-वंशाभ्युदय' काव्य के अनुसार मैसूर के दोड्ड देवराज ओडेयार के राज्यकाल में चिक्कदेव ओडेयार यहां दर्शनार्थ आये थे और उन्होंने दर्शन-लाभ के बाद प्रसन्न होकर 'मदनेऊ' नामक ग्राम दान में दिया था।

नगर जिनालय

नगर जिनालय एक छोटा-सा मन्दिर है। इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की प्रभावलीयुक्त मूर्ति विराजमान है। इसे होयसल बल्लाल नरेश (द्वितीय) के मंत्री नयकीर्ति सिद्धान्त चक्रवर्ती के शिष्य नागदेव ने बनवाया था। इसके निर्माण में नगर के व्यापारियों की भी सहायता प्राप्त हुई थी। सम्भवत: इसीलिए इसे नगर जिनालय कहा जाता है। इसे श्रीनिलय भी कहते हैं। निलय शब्द का अर्थ भी मन्दिर अथवा निवास होता है।

मंगाई बस्ती

इस मंगाई मन्दिर का निर्माण श्री चारुकीर्ति पंडिताचार्य की मंगाई नाम की शिष्या ने कराया था। इस मन्दिर में तीर्थंकर अनन्त-नाथ की साढ़े चार फुट ऊंची मूर्ति स्थापित है। इसमें और भी तीन मूर्तियां हैं। मन्दिर के बाहर प्रवेश द्वार पर पाषाण की दो कलापूर्ण

हाथियों की मूर्तियां भी हैं। शिलालेख संख्या १३२ में इस मन्दिर का नाम 'त्रिभुवन चूड़ामणि' जिनालय लिखा है। लेख के अनुसार इसका निर्माण सन् १३२५ में हुआ था।

जैन मठ

जैन मठ इस क्षेत्र के अधिपति (मठाधीश) स्वस्ति श्री चारुकीर्ति पंडिताचार्य भट्टारक स्वामी का निवास स्थान है। मठ के बीच में खुला हुआ प्रांगण है। आगे जिन मन्दिर है। यहीं चार गर्भ-गृहों में धातु, पाषाण आदि की अनेक कलापूर्ण मूर्तियां हैं। तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान की कलामय मूर्ति प्रभामण्डल से युक्त है और पीतल की बनी हुई है। मन्दिर में ज्वालामालिनी, शारदा और कूष्मांडिनी शासन देवियों की सुन्दर मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। यहां के नव देवता बिम्ब में पंचपरमेष्ठि के अतिरिक्त जिन धर्म, जिनागम, चैत्य और चैत्यालय भी चित्रित हैं। मठ की दीवारों पर तीर्थंकरों तथा जैन राजाओं की दिन-रात की जीवन घटनाओं के अनेक रंगीन चित्र बने हैं। ऊपर की मंजिल में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति है। मठ में 'चन्द्रगुप्त ग्रन्थमाला' नामक शास्त्र भण्डार बड़ा समृद्ध है। इसमें अनेक प्राचीन हस्तलिखित भोजपत्र और ताड़पत्रीय ग्रन्थों का वृहत्संग्रह है। यहां नवरत्नमय मूर्तियों का दर्शन भी कराया जाता है। यहां की भट्टारक परम्परा की विरुदावली "स्वस्ति श्री मद्रायराजगुरु भूमण्डलाचार्यवर्य महावादवादीश्वर रायवादि पितामह सकल विद्वज्जन सार्वभौमाद्यनेक विरुदावली विराजमान श्रीमन्निजघटिक स्थान दिल्ली कनकाद्रि श्वेतपुर सुधापुर संगीतपुर क्षेम वेणुपुर श्रीमद् वेलगुल सिद्ध सिंहासनाधीश्वर श्रीमदभिनव भट्टारक पट्टाचार्यवय चारुकीर्ति पंडिताचार्य महा स्वामी जी" से ज्ञात होता है कि चारुकीर्ति पंडिताचार्यों से अनेक राजवंश

विविध रूप से उपकृत हुए। इस परम्परा के भट्टारक आज भी राज-गुरु माने जाते हैं।

यहां के आचार्य गुरुओं ने तपोबल के चमत्कार से जैनेतर राज्यों में भी जैन धर्म की प्रभावना की। यहां के प्राचीन विद्यापीठ से अनेक सुयोग्य विद्वान निकल चुके हैं। उनमें से कई विद्वान प्रभावशाली भट्टारक पद पर भी आसीन हुए। दक्षिण भारत के आजकल के प्रायः सभी विद्वान इस विद्यापीठ के स्नातक रह चुके हैं।

ईसवी पूर्व से जैन आचार्य गुरु परम्परा में संघभेद हो चुके थे। अतः श्रवण बेलगोल उससे प्रभावित हुआ तो क्या आश्चर्य ? यहां के गुरुपीठ की परम्परा देवसंघ, देशीय गण, उत्तर पुस्तक गच्छ कुंदकुंद आम्नाय से सम्बन्ध रखती है। मूडबिद्री और कारकल मठ इसी मठ के शाखा और उपशाखा मठ थे। श्रवण बेल गोल और दक्षिण की सम्पूर्ण जैन समाज से सम्बन्धित है। इस कारण धर्म रक्षार्थ स्थापित इस गुरुपीठ का सम्बन्ध सभी दिगम्बर जैन समाज से है। पूर्व काल से ही यहां के भट्टारक जप, तप, स्वाध्याय, ध्यान, समाधि, मौन अनुष्ठान में निरत रहते हुए श्रावकों को प्रायश्चित, धर्मोपदेश देकर आत्म कल्याण में प्रेरित करते रहे हैं।

इस दिशा में उनको कुछ आध्यात्मिक शक्ति का भी प्रदर्शन करना पड़ता है। एक घटना इस प्रकार बतलायी जाती है—

दोर समुद्र के विट्टिदेव रामानुजाचार्य के प्रभाव से वैष्णव मताव-लम्बी हो गये थे और उनका नाम विष्णुवर्धन प्रसिद्ध हुआ था। उनके वंशज वीर बल्लाल १२वीं शताब्दी में जैन धर्म के कट्टर विरोधी हो गये। उन्होंने दोर समुद्र जिसे हलेवीड भी कहते हैं और उसके आस-पास के अन्य स्थानों पर मन्दिरों में प्रतिष्ठित अनेक जैन प्रतिमाओं को तुड़वा दिया और जैन धर्मावलम्बियों के साथ भारी अन्याय किया।

अदृष्ट से अडगूर के पास भूमि फट गई। हजारों नर-नारी और पशु उसमें गिर कर प्राण खोने लगे। इस भयंकर घटना से राजा भी भयभीत हो गया। उसने आदेश दिया कि मांत्रिकों और तांत्रिकों को बुलाकर उपद्रव शान्त किया जाये और उस भूमि को तुरन्त पाट दिया जाय। पर कोई भी योद्धा उस काम को सिद्ध न कर सका। तब कुछ दरबारियों के अनुरोध पर राजा वीर ने श्रवण बेल गोल के जैन मठ के भट्टारक शुभचन्द्राचार्यजी से उपद्रव शान्त करने की प्रार्थना की। वे समय को पहचान कर राजा की प्रार्थना पर वहां गये और 'गणधर वलय', 'वज्र पंजर', 'कलि कुण्ड' आदि जैन आराधनाओं से १०८ कूष्मांडफलों को मंत्रोच्चारपूर्वक उस फटी हुई भूमि के भीतर डालते गये। जब जमीन के पटने में कुछ कसर रह गई तो कूष्मांड का डालना बन्द कर दिया गया। जहां तक कूष्मांड पड़े, वहां तक तो जमीन पट गई, बाकी का चिह्न आज भी वहां विद्यमान है। कहा जाता है कि उस घटना की याद के लिए ही इतनी जमीन वैसे ही छोड़ दी गई।

उस आश्चर्यजनक चमत्कार को देखकर राजा को अत्यन्त संतोष हुआ और आचार्य शुभचन्द्र को 'चारुकीर्ति' उपाधि से विभूषित किया। इस घटना का उल्लेख स्थल पुराण में मिलता है।

यहां के भट्टारक स्वामी की एक और चमत्कारी घटना इस प्रकार बताई जाती है। सन् ११०० में बल्लाल नरेश (प्रथम) किसी महारोग से पीड़ित हुए। अनेक वैद्य उपचारक आये किन्तु किसी से भी वह महारोग दूर न हो सका। इस असाध्य रोग को यहां के पूज्य भट्टारक ने दूर कर दिया। उससे प्रभावित होकर राजा बल्लाल ने उनको 'बल्लाल जीवन रक्षापालक' की उपाधि से अलंकृत किया।

कल्याणी सरोवर

श्रवणबेलगोल नगरी के बीच में पश्चिम की ओर एक तलाब है जिसका नाम कल्याणी सरोवर है। इसके चारों ओर दीवारें हैं और सुन्दर सीढ़ियां भी बनी हुई हैं। इस श्वेत सरोवर के कारण ही इस नगर का नाम बेल गोल पड़ा जिसका कन्नड भाषा में अर्थ होता है श्वेत सरोवर। यह वही सरोवर है जो गुल्लिकायज्जी द्वारा गोमटेश्वर की प्रतिमा के अभिषेक के बाद दूध ढल कर यहां एकत्र हो गया था और सरोवर बन गया था। आगे चल कर इसी के नाम पर नगर का नाम भी पड़ गया। इसके उत्तर की ओर सभामंडप के लेख के अनुसार मैसूर के महाराजा चिक्कदेव राज ओडेयार ने सन् १६७२ में इसका जीर्णोद्धार कराया था। इस सरोवर में महामस्तकाभिषेक के अवसर पर विशेष उत्सव मनाया जाता है। सहस्राब्दि समारोह के अवसर पर इस सरोवर को बहुत ही सुन्दर और कलापूर्ण रूप देने की योजना बनाई गई है।

जक्कि कट्ट

भण्डार बस्ती अथवा भण्डार मन्दिर के दक्षिण की ओर एक छोटा-सा तालाब है जिसे जक्कि कट्टे कहते हैं। यहां दो चट्टानें हैं जिन पर जैन प्रतिमाएं हैं। प्रतिमाओं के नीचे लेख खुदे हैं। लेख के अनुसार इसका निर्माण बोप्पदेव की माता और गंगराज के बड़े भाई की पत्नी तथा शुभचन्द्र सिद्धान्त देव की शिष्या जक्किदेवी ने कराया था। इसी साध्वी ने सामेहल्ली में भी एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण कराया था।

चेन्नण्ण का कुण्ड

नगर के दक्षिण की ओर एक कुण्ड है जिसे चेन्नण्ण कुण्ड कहा जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि इसे किसी चेन्नण्ण नामक व्यक्ति ने बनवाया होगा।

श्रवणबेलगोल के निकट के दर्शनीय स्थान

जिननाथपुर

श्रवणबेलगोल के उत्तर की ओर लगभग एक मील पर जिननाथपुर स्थित है। लेख क्रमांक ४७६ के अनुसार होयसल नरेश विष्णुवर्धन के सेनापति गंगराज ने इसे सन् १११७ में बसाया था। यहीं जैनों के तीर्थंकार शांतिनाथ का मन्दिर है। इस मन्दिर में साढ़े पाँच फुट ऊंची तीर्थंकर शांतिनाथ की कलापूर्ण सुन्दर मूर्ति है। यह मन्दिर होयसल शिल्पकला का सुन्दर नमूना है। इसमें एक गर्भ-गृह, सुखनासी और नवरंग है। नवरंग के चार स्तंभ बहुत ही सुन्दर कलामय हैं। बाहरी दीवारों पर जिनेन्द्र, यक्ष, यक्षिणी, ब्रह्मा, सरस्वती, मन्मथ और मोहिनी आदि की अनेक कलापूर्ण मूर्तियां हैं। मैसूर राज्य के सब जैन मन्दिरों में यह सबसे अधिक सुन्दर है।

भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा के लेख क्रमांक ३८० के अनुसार ज्ञात होता है कि वसुधैक बान्धव सेनापति रेचिमय्य ने इसका नर्माण कराकर सागरनन्दि सिद्धान्तदेव को अर्पित कर दिया था।

इसका निर्माण समय सन् १२०० के समीप अनुमान किया जाता है।

अरेगल बस्ती

जिननाथपुर के पूर्व में अरेगल मन्दिर अवस्थित है। कन्नड़ भाषा में अरेगल चट्टान को कहते हैं और यह मन्दिर एक चट्टान के ऊपर निर्मित है, इसलिए इसे अरेगल बस्ती कहा जाता है। यह अधिक प्राचीन ज्ञात होता है। इस मन्दिर में प्रभावलीयुक्त पांच फुट ऊंची भगवान पार्श्वनाथ की पद्मासन मूर्ति विराजमान है। यह मूर्ति प्राचीन नहीं, सन् १८२६ की प्रतिष्ठित है। प्राचीन मूर्ति खंडित होकर तालाब में पड़ी है। यहां नव देवता, नन्दीश्वर, पंचपरमेष्ठी आदि की धातु की निर्मित मूर्तियां भी विराजमान हैं। इस गांव के निकट ही छोटा-सा एक समाधि मंडप है जिसे 'शिलाकूट' कहते हैं। मन्दिर चार फुट लम्बा और पांच फुट ऊंचा है। शिलालेख क्रमांक ३८६ से ज्ञात होता है कि सन् १२१३ में बालचन्द्र देव के पुत्र का यहां समाधि-मरण हुआ था। वहां अनेक निषद्याएं भी हैं।

कम्बद हल्ली

जैनबद्री से ११ मील दूर कम्बद हल्ली नामक स्थान है। यहां का एक कालमय ऊंचा स्तम्भ कर्नाटक राज्य के अत्यन्त सुन्दर स्तम्भों में से माना जाता है। इसके ऊपर ब्रह्मयक्ष की मूर्ति है। इससे पश्चिम की ओर थोड़ा हटकर पाषाणों से निर्मित सात जैन मन्दिर हैं। ये अत्यन्त प्राचीन और महत्वपूर्ण स्मारक हैं। पत्थरों से निर्मित यह मन्दिर चार फुट ऊंचा चबूतरे पर बना है। यहां के शांतिनाथ मन्दिर में तीर्थंकर शांतिनाथ की १२ फुट ऊंची भव्य मूर्ति है। सेना-पति गंगराज के पुत्र बोप्पण्ण ने इसका निर्माण कराया था। अब यह

खंडहर की स्थिति में है, फिर भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह स्थल बेल्लूर और हलेबीड़ की कला और शिल्प से किसी दशा में भी कम महत्वपूर्ण नहीं है ।

कर्नाटक के अन्य तीर्थ व दर्शनीय स्थल

गोम्मटगिरि

मैसूर से १५ मील दूरी पर गोम्मटगिरि क्षेत्र है। यह प्रायः निर्जन स्थान पर है। एक छोटी-सी पहाड़ी पर भगवान बाहुबली की १८ फुट ऊंची मूर्ति विराजमान है। इस खड्गासन मूर्ति पर कोई शिलालेख नहीं है। मूर्ति भावपूर्ण और दर्शनीय है। मैसूर के कुछ उत्साही जैन भाईयों ने इस ओर ध्यान दिया। मूर्ति के दर्शनार्थ ऊपर तक पहुंचने के लिए जो सीढ़ियां बनी थी, वे कुछ वर्ष पूर्व शिला फट जाने से अलग हो गई थी और मूर्ति के दर्शनों के लिए ऊपर पहुंचना असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो गया था। अब उसका पुनरुद्धार कर दिया है और दर्शनार्थी आसानी से सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर दर्शन लाभ कर सकते हैं। सड़क पार ठीक सामने एक धर्मशाला भी बन गई है, जहां बिजली, पानी सबका प्रबन्ध है। जब यहां वार्षिक मेला लगता है तो जंगल में मंगल हो जाता है। मूर्ति भावपूर्ण और दर्शनीय है।

हलेबीड़

श्रवण बेल गोल से ३२ मील पर हासन (जिला) नगर है और यहां से १८ मील दूरी पर हलेबीड़ है। यहाँ पर तीन प्राचीन जैन

मन्दिर हैं। इन मन्दिरों में तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा तीर्थंकर शांतिनाथ की मूर्तियां दर्शनीय हैं। ये कलात्मक और प्राचीन हैं। हलेबीड होय-सल नरेशों के समय प्रमुख नगर रहा था। इसका विध्वंस मुसलमानों ने किया। यहां के ये मन्दिर बिट्टदेव, जो बाद में वैष्णव धर्म में दीक्षित होकर विष्णुवर्धन हो गये थे, के समय में दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। विष्णुवर्धन ने जब जैनधर्म का त्याग किया था, तब भी उसकी रानी शान्तलादेवी इन मन्दिरों की देखरेख करती थी। इस समय ये मन्दिर, जीर्ण शीर्ण दशा में पड़े हैं। चमकते हुए कसौटी पत्थरों के ये मन्दिर अब भी ऐसा लगता है मानों, अभी-अभी बनकर तैयार हुए हैं और वस्तुकला शिल्पी की छेनी अभी-अभी रुकी है। ये तीन मन्दिर हैं—तीर्थंकर पार्श्वनाथ, तीर्थंकर शांतिनाथ और तीर्थंकर आदिनाथ के। भगवान महावीर की मूर्ति खण्डित हो गई है। मन्दिरों के उत्तरी पार्श्व में खुदाई का काम जारी है। मन्दिर के अन्दर कसौटी पत्थर के खम्भों का सौन्दर्य देखते ही बनता है। उन पर खुदाई का काम लकड़ी से भी बारीक हैं। पत्थरों को बजाने से उसमें स्वर निकलता है और ऐसा लगता है मानों तार वाला बाजा बजाया जा रहा हो। पुरातत्व विभाग द्वारा यहां की देखरेख तो होती है, किन्तु अर्थाभाव के कारण जिस प्रकार की सफाई-सुथराई होनी चाहिए वह दिखाई नहीं देती। जैसी उच्च स्तर की कला यहां विद्यमान है, वैसा रख रखाव कुछ भी नहीं है। क्या ही अच्छा हो, यदि इसके संरक्षण की ओर पुरातत्व विभाग विशेष ध्यान दे, आवश्यकता हो तो जैन समाज से सहयोग भी प्राप्त किया जाये।

बेलूर

बेलूर हलेबीड़ से नौ मील की दूरी पर है। इतिहास बतलाता है कि हलेबीड़ के ध्वंस के बाद होयसल नरेश ने बेलूर को अपनी राजधानी बनाया था। बेलूर का सुप्रसिद्ध केशव मन्दिर विष्णुवर्धन ने सन् १११७ में बनाया था। फरग्यूसन के अनुसार होयसल शिल्पकला के सबसे अच्छे नमूनों में से ये है। इस मन्दिर के चारों ओर ऊंचा परकोटा है और बीच में मन्दिर है। परकोटे के निकट ही छोटे-छोटे कई मन्दिर बने हैं। मुख्य मन्दिर में गर्भ-गृह सुखनासी और नवरंग यानी मुख्य जगमोहन बहुत सुन्दर है। जगमोहन में जाने के लिए तीन ओर से द्वार बने हैं पूर्व, उत्तर और दक्षिण। दक्षिण की ओर से द्वार का नाम शुभ्र प्रवेश है और उत्तर का वैकुण्ठ प्रवेश। पूर्व का द्वार महाद्वार के ठीक सामने है और सबसे सुन्दर है। इसके सामने ही मन्मथ यानी कामदेव और उसकी पत्नी रति की सुन्दर मूर्तियां हैं। बाहर की ओर दीवारों पर रामायण और महाभारत की कथाओं पर आधारित सुन्दर दृश्य उत्तीर्ण है। यहां पर होयसल नरेश विष्णुवर्धन का दरबार भी दिखाया गया है। दुर्गा तथा शंकर की मूर्तियां भी बहुत सुन्दर हैं। एक मूर्ति नृत्य करती हुई शन्तलादेवी की भी है। प्रवेश द्वारों पर विष्णु, लक्ष्मीनारायण, वामन, नरसिंह, रंगनाथ, शिव तथा महिषासुर मर्दिनी की मूर्तियां दर्शनीय है। कैलाश पर्वत पर शिव-पार्वती की मूर्तियां भी अत्यन्त मनोहारी हैं। इस कैलाश पर्वत को रावण अपने हाथ पर धारण किये हुए है। अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों में भैरव, दुर्गा, ताण्डवेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु आदि की बहुत ही सुन्दर मूर्तियां हैं। सारे स्तम्भ, छतें, बाहरी दीवार सभी पर भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियां अत्यन्त कलात्मक हैं। केशव मन्दिर कर्नाटक के सुन्दर दर्शनीय स्थलों में से है।

धर्म-स्थल

बेल्लूर से मूड़गेरे होते हुए १८ मील तक चार्माडी घाटी से नीचे उतरते ही उजिरे मिलता है। वहां से छह मील की दूरी पर धर्म-स्थल । धर्म-स्थल सर्व धर्म समन्वय का सुन्दर नमूना है। यहां पर जैन मन्दिर के साथ-साथ मंजुनाथ का मन्दिर भी है। इनके मुख्य अधिष्ठाता हैं श्री हेगड़े। इस क्षेत्र को सामाजिक भारतीय संस्कृति का परिचायक कह सकते हैं।

धर्म-स्थल का इतिहास बड़ा ही रोचक है। पहले इस स्थान का नाम कुदुमा था जिसका अर्थ होता है—वह स्थान जहां दान और सदाव्रत बंटता हो। ५०० वर्ष पूर्व यहां एक जैन परिवार रहता था। गृह-स्वामिनी अम्मूदेवी बल्लालती अपने पति देव वीरमन्ना पेरगड़े के साथ रहती थी। उनके घर का नाम था नेत्याडिबीडू। यह परिवार सरदारों का परिवार था और ये लोग बहुत दानी थे। नेत्याडिबीडू परिवार जैन तीर्थंकर भगवान चन्द्रनाथ की पूजा करता था। उनका वह प्राचीन मन्दिर श्री चन्द्रनाथ स्वामी बस्ती में आज भी विद्यमान है।

एक दिन धर्म देवता मनुष्यों का रूप धारण कर हाथी-घोड़ों पर सवार बड़े ऐश्वर्यपूर्ण ढंग से नेत्याडिबीडू आये। अम्मूदेवी बल्लालती और उनके पति ने बड़ी प्रसन्नता और श्रद्धा के साथ उनका स्वागतकिया देवता बहुत प्रसन्न हुए और पेरगड़े अथवा हेगडे परिवार से उनके दान तथा धार्मिकवृत्ति को देखकर अत्यन्त प्रभावित भी हुए। जाते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया कि नेत्याडिबीडू हमारे रहने के लिए छोड़ दो, तुम अपने लिए और निवास स्थान बना लो। हमारी पूजा, प्रतिष्ठा करो तो इस स्थल पर लक्ष्मी और सरस्वती की सदा कृपा रहेगी। और फिर देवता अन्तर्ध्यान हो गये। तब पेरगड़े परिवार को पता चला

उनके अतिथि सामान्य-जन न होकर देवी-देवता थे। इसके उपरान्त उन्होंने यहां कई मन्दिर बनवाये और अपना निवास स्थान देवताओं के लिए छोड़ दिया और स्वयं अन्यत्र रहने लगे।

एक रात्रि को पेरगड़े दम्पत्ति को स्वप्न में देवता फिर दिखाई दिये। उन्होंने कहा कि हम कालराहु, कालारकाय, कुमारस्वामी तथा कन्याकुमारी हैं। इन सबके लिए अलग-अलग मन्दिर बनवाओ और निर्धारित समय पर उत्सव करो भय खाने की आवश्यकता नहीं, तुम्हारा मंगल होगा। इस प्रकार धर्म देवों के ये मन्दिर बनाए गये और वहां पर उत्सव पर्व तथा नादवली बराबर होते रहते हैं। श्री पेरगड़े ने श्री मंजुनाथ स्वामी का एक महालिंग स्थापित कराया। इस समय वहां पेरगड़े अथवा हेगड़े की संयति पूजन, प्रक्षाल करते हैं। १५वीं शताब्दी से लेकर अब तक हेगड़े परिवार ही निरन्तर पूजा कार्य करता आ रहा है। प्रथम हेगड़े १४१७ से १५०३ तक कार्य करते रहे। वर्त्तमान में श्री वीरेन्द्र हेगड़े पीठासीन हैं। उनका पट्टाभिषेक उनके पिता स्वर्गीय श्री रत्नवर्मा हेगड़े के स्वर्गवास के बाद हुआ। श्री वीरेन्द्र हेगड़े युवक हैं। उनका जन्म २५ नवम्बर, १९४८ को हुआ था। उन्होंने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। बहुत ही मिलनसार, दानी और धार्मिक मनोवृति के व्यक्ति हैं। क्षेत्र की ओर से हजारों व्यक्तियों को प्रतिदिन प्रातः सायं भोजन कराया जाता है। क्षेत्र की ओर से छह कालेज, तीन हाई स्कूल, तीन प्राइमरी स्कूल, तथा चार इंस्टीट्यूट और कई अस्पताल चलते हैं। दक्षिण भारत में धर्म-स्थल सर्व धर्म समवन्य का अद्वितीय नमूना है। यहां पर न्याय प्राप्त करने के लिए सैकड़ों व्यक्ति-हिन्दू, जैन, मुस्लिम, ईसाई आदि हेगड़ेजी की सेवा में आते हैं और आवेदन करते हैं। श्री हेगड़े के निर्णय को राज्य मान्यता प्रदान करता है।

धर्म-स्थल के प्रांगण में ही एक पहाड़ी पर भगवान गोम्मटेश्वर की एक नयी मूर्ति की स्थापना की गई है जो बहुत ही सुन्दर है। यहां पर क्षेत्र में आवास के लिए अच्छी धर्मशाला तथा अतिथि निवास का भी प्रबंध है।

वेणूर

धर्म-स्थल से वेणूर १५ मील की दूरी पर है। यहां पर भी भगवान बाहुबली की ३७ फुट ऊंची मूर्ति नदी के किनारे पर प्रतिष्ठित है। यहां आठ जैन मन्दिर हैं, जो दर्शनीय हैं। भगवान गोम्मटेश्वर की बड़ी मूर्ति तथा अन्य मूर्तियां सभी कलात्मक हैं।

मूडबिद्री

वेणूर से १२ मील दूर मूड़बिद्री क्षेत्र की मान्यता भी बहुत अधिक है। यहां १८ प्राचीन जैन मन्दिर हैं। त्रिभुवन तिलक चूड़ामणि नामक मन्दिर में तीर्थंकर चन्द्रप्रभु की सात धातु की मूर्ति प्राचीन और विशाल है। इस प्रकार की मूर्तियां भारत में बहुत कम हैं। मूडबिद्री में जैनों के धर्म-ग्रन्थों की बहुत-सी हस्त लिखित पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं। जिनमें मुख्य हैं—धवला, जय धवला और महा धवला। ताड़-पत्र पर दूसरे अनेक जैन ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। यहां रत्न-मणियों की मूर्तियों का भी दर्शन कराया जाता है जिसे सिद्धांत दर्शन कहते हैं। यहां भी काफी संख्या में यात्री आते हैं। ठहरने के लिए धर्मशाला की व्यवस्था है। स्थान बहुत सुन्दर है।

कारकल

मूडबिद्री से केवल १० मील की दूरी पर कारकल है। यहां पर

एक पहाड़ी के ऊपर भगवान बाहुबली की ४१ फुट ऊंची अत्यन्त सुन्दर मूर्ति स्थापित है। पहाड़ी पर चढ़ने के लिए पत्थरों को काटकर सीढ़ियां बनायी गई हैं। पहाड़ी पर चढ़ने के चतुर्मुखी बस्ती अर्थात् चौमुखी विशाल मन्दिर है। अन्य मन्दिरों को मिलाकर यहां पर कुल १८ मन्दिर हैं। इस पहाड़ के निकट कुछ बस्तियां हैं, जहां सीधे-साधे व्यक्ति रहते हैं। रहने के लिए यहां धर्मशाला की व्यवस्था भी है। इस स्थान के आस-पास ग्रेनाइट पत्थर की पहाड़ियां हैं जिनके शिलाखण्डों से नई मूर्तियां बना कर उत्तर भारत को भेजी जाती हैं।

वारंग

कारकल से १६ मील की दूरी पर वारंग क्षेत्र मिलता है। यहां पर एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण किया गया है। तीर्थंकर नेमिनाथ का यह मन्दिर दर्शनीय है। सम्मुख ही मानस्तम्भ भी सुन्दर है। निकट ही एक विशाल सरोवर है जिसके बीच में जल मन्दिर है। यात्रियों को मठ में ठहरने की व्यवस्था है। जैनबद्री (श्रवणबेलगोल) के वर्तमान भट्टारक स्वामीजी का जन्म इसी स्थान पर हुआ था और उनकी प्रारम्भिक शिक्षा भी यहीं हुई थी। उनके परिवार के व्यक्ति आज भी यहीं रहते हैं।

कुन्दाद्रि

वारंग से १२ मील चलने के बाद सोमेश्वर आता है और सोमेश्वर से नौ मील की घाटी चढ़ने पर 'आगुबे' पहुंचते हैं। आगुबे से शिमोगा के मार्ग में लगभग चार मील की दूरी पर गुड्डेकेरी गांव मिलता है। वहां से दाहिनी ओर का मार्ग कुन्दाद्रि जाता है। चार मील जाने पर पवत शृंखला मिलती है जिसके ऊपर दो मील चढ़ने पर प्रवासी मन्दिर

है। सामने ही मान स्तम्भ सुन्दर है और तीर्थंकर पार्श्वनाथ बस्ती अथवा मन्दिर बहुत ही कलात्मक है। यहीं पर एक सरोवर है जिसका नाम है 'पापविच्छेदनी'। पापों के शमन के लिए जैसा हमारे देश में होता है, लोग इस सरोवर में स्नान करते हैं।

होम्बुज

कुन्दाद्रि से वापस गुड्डेकेरी गांव आना पड़ता है। उससे आगे १२ मील पर तीर्थ हल्ली मिलता है। यहां से सागर रोड पर १८ मील की दूरी पर होम्बुज अथवा हुमचा अतिशय क्षेत्र है। यहां का मुख्य मन्दिर तीर्थंकर पार्श्वनाथ का है। पास में ही शासनदेवी पद्मावती का ऐतिहासिक मन्दिर है। दरअसल पद्मावती के अतिशय के कारण ही यह क्षेत्र इतना प्रसिद्ध है। पंच बस्ती अथवा पंच मन्दिर में पांच प्राचीन मूर्तियां हैं जो अत्यन्त सुन्दर हैं। इस क्षेत्र का इतिहास बड़ा मनोहारी है।

उत्तरी मथुरा से राजकुमार जिनदत्तराय यहां पहुंचे थे और उन्होंने दक्षिण में होम्बुज को अपनी राजधानी बनाया था। हुआ यह कि जिनदत्तराय के पिता साकार महाराज ने अपनी एक रखैल वेड़ा जाति की स्त्री के कारण जिनदत्तराय को मार डालने का षड्यन्त्र किया था। दासी अपने पुत्र मारिदत्त को राजगद्दी पर बिठाना चाहती थी। राजगुरु श्री सिद्धान्तकीर्ति मुनि महाराज ने ज्ञान से इस षड्यन्त्र का पता चलाया और उन्होंने राजकुमार जिनदत्तराय को मथुरा से दक्षिण भारत चले जाने का निर्देश दिया और यह भी कहा कि वे श्री पद्मा-वती देवी की मूर्ति को अपने साथ घोड़े पर ले जायं ताकि वह सिद्ध देवी सदा उनकी रक्षा करती रहे। इस प्रकार जिनदत्तराय अपने घोड़े पर मूर्ति रखकर दक्षिण भारत की ओर चल पड़े। जैसे ही राजा

को इस बात का पता लगा, उन्होंने उनके पीछे सिपाही दौड़ाये। जन-श्रुति के अनुसार जैसे ही राजा के ये सिपाही जिनदत्तराय को मारने के लिए घोड़े के निकट आते, तभी देवी पद्मावती के प्रभाव के कारण उन लोगों को असफल होकर पीछे लौट जाना पड़ता। चलते-चलते जिनदत्तराय होम्बुज पहुंच गये। यात्रा से वे इतना थक गये थे कि वहीं लक्की वृक्ष के नीचे सो गये। सोते हुए उन्हें स्वप्न हुआ कि इस स्थान को अपनी राजधानी बनाओ पास के जंगल में रहनेवाले लोगों की मदद करो। स्वप्न में यह भी कहा गया कि पद्मावतीदेवी के पैर से छूनेवाली हर धातु स्वर्ण बन जायेगी। इसीलिए इस स्थान का नाम पड़ा होम्बुज अथवा होमुजा। कन्नड़ भाषा में इसका अर्थ होता है, स्वर्ण का जन्म स्थान। शताब्दियों तक पद्मावतीदेवी की कृपा से जिनदत्तराय की पीढ़ियां दर पीढ़ियां राज्य करती रहीं। इस परिवार के एक राजा ने १५ वीं शताब्दी में कारकल में भगवान गोम्मटेश्वर की मूर्ति की स्थापना की थी, जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

इतिहास के अनुसार श्री बाहुबली गुड्डु घाटी के नीचे एक कुआं है जिसका नाम है—हालुबावी। इसी कुएं से जिनदत्तराय द्वारा स्थापित पद्मावतीदेवी की मूर्ति प्राप्त हुई थी। इसीलिए इस कुएं को पद्मावतीदेवी की मूर्ति का उद्भव स्थान माना जाता है और यहां पर धर्म-जाति के भेदभाव के बिना सभी धर्म और जातियों के लोग पद्मावतीदेवी की मनौती मनाने आते हैं। आज भी मूर्ति की पूजा-अर्चना करके लोग अपने मन में प्रश्न करते हैं कि हमारा अमुक कार्य सम्पन्न होगा अथवा नहीं और होगा तो कब होगा? मूर्ति के सम्मुख पर्दा खींच दिया जाता है। फिर जब पर्दा हटाया जाता है, तो मूर्ति के कन्धे पर से फूल नीचे गिर जाने पर माना जाता है कि कार्य सम्पन्न

हो जायगा अन्यथा नहीं। इस प्रकार का विश्वास लोगों में है और वही विश्वास उन्हें फल भी देता है।

हुमचा में जैन मठ भी है। इस मठ के अधिपति श्री कुन्दकुन्दान्वय नन्दीसंघ के अनुयायी रहे हैं। मुनि नेमिचन्द्र के बाद पीठ के अधिष्ठाता श्री देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक कहलाते रहे हैं। भूतपूर्व भट्टारक महाराज का २ मई, १६४७ को पट्टाभिषेक किया गया था। उनका देहावसान ३० जुलाई १६७१ को हो गया उनके उत्तराधिकारी वर्तमान भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामी का पट्टाभिषेक २६ सितम्बर १६७१ को किया गया है। वर्तमान भट्टारक स्वामी नवयुवक हैं, और बड़े विद्वान हैं। क्षेत्र का प्रबन्ध मठ के द्वारा होता है। श्री पार्श्वनाथ मन्दिर तथा श्री पद्मावतीदेवी मन्दिर श्री जिनदत्तराय ने सातवीं शताब्दी में निर्माण कराये थे। इनके अतिरिक्त दो प्रसिद्ध मन्दिर और हैं—मककाल मन्दिर तथा बोगरा मन्दिर। यहां पर भी रत्नों की प्रतिमाए हैं, जिनका दर्शन कराया जाता है और प्राचीन ग्रन्थ भंडार भी हैं। यहां पर एक बाहुबली बस्ती भी है। इसका जीर्णोद्धार कार्य करना है। मूलनाक्षत्र के दिन जो प्रायः मार्च में पड़ता है देवी पद्मावती की रथयात्रा भी यहा हर साल निकलती है। अनेक यात्री उस अवसर पर आते हैं। ठहरने के लिए यहां धर्मशाला है।

सिंहनगद्दे-नरसिंह राजपुर अथवा होम्बुज तीर्थ हल्ली कोप्पा

यह अतिशय क्षेत्र शिमोगा से ३२ मील की दूरी पर है। यहां हर मन्दिर प्राचीन और दर्शनीय है। इस अतिशय क्षेत्र की प्रसिद्धि शासन देवी ज्वालामालिनी के कारण है। लोग उनकी मनौती मनाते हैं और मनवांछित फल प्राप्त करते हैं इसलिए इसे देवी ज्वालामालिनी

का अतिशय क्षेत्र कहा जाता है। यहां समन्तभद्र ज्ञानपीठ ब्रह्मचर्य आश्रम भी है। ठहरने के लिए धर्मशाला है। यहां जैन भी हैं। स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक जी यहां रहते हैं।

जोग प्रपात

उत्तर कनाड़ा जिले और शिमोगा के बीच में सागर ताल्लुका है। यहीं पर विख्यात जोग प्रपात है। शरावती नदी पहाड़ों से होती हुई ९६० फीट ऊपर से नीचे गिरती है और जल-प्रपात का निर्माण करती है। यहां पर चार प्रपात हैं जिनके नाम हैं—राजा, रारर, राकेट और रानी। पास ही शरावती और महात्मा गांधी जल विद्युत प्रतिष्ठान है। प्रदेश की अधिकांश बिजली यही से प्राप्त होती है। यहां पर ठहरने की अच्छी व्यवस्था है।

गेरु सोप्पा

जोग प्रपात से थोड़ी दूरी पर माविन गुण्डी, गेरुसोप्पा है। यहां कई प्राचीन जैन मन्दिर और कलामय मूर्तियां हैं। ज्वालामालिनी का भी मन्दिर है। मार्ग जल-मय होने से यात्री प्रायः वहां नहीं जा पाते। ठहरने का स्थान भी नहीं है। यदि उचित व्यवस्था हो जाय तो यह स्थान बड़ा आकर्षक बन सकता है।

श्रीरंगपट्टन

मैसूर से १० मील की दूरी पर कावेरी नदी से घिरा द्वीप नगर श्रीरंगपट्टन है। हैदरअली और उसके पुत्र टीपू सुल्तान की यहां राजधानी थी। १८ वीं शती में अंग्रेजों ने इसे जीता था। टीपू और अंग्रेजों का युद्ध अति प्रसिद्ध है। यहां टीपू के समय की और टीपू

से सम्बन्धित बहुत सी वस्तुएं रखी हैं । यहां पर एक जैन मन्दिर है जिसका व्यय टीपू सुल्तान स्वयं वहन किया करते थे और इस प्रकार दूसरे धर्म के प्रति उनकी सद्भावना का परिचय मिलता है । जैन मन्दिर कलामय और सुन्दर है ।

वृन्दावन उद्यान

श्रीरंगपट्टन से नौ मील और मैसूर शहर से १२ मील पर कृष्णराज सागर है । कावेरी नदी पर यह बांध बनाया गया है और बांध के नीचे बहते हुए जल के इधर-उधर इतना सुन्दर उद्यान बना दिया गया है कि देखते ही बनता है । रात को बहती हुई नहरों और राजबाहों में जब पानी की लहरों पर रंग-बिरंगे बिजली के बल्बों की रोशनी पड़ती है तब स्वर्गीय शोभा हो जाती है । मैसूर जानेवाला प्रायः हर व्यक्ति यहां जाता है और संध्या को हजारों-हजारों, लाखों-लाखों गुना अधिक सुन्दर लगता है । यह देश विदेश में प्रसिद्ध है और पर्यटकों का स्वर्ग कहा जा सकता है ।

कर्नाटक के प्रमुख नगर

कर्नाटक राज्य भारत के सुन्दरतम राज्यों में से एक है । यहां की प्राकृतिक छटा का कहना ही क्या । छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, नारियल और सुपारी के लम्बे चौड़े बाग, चन्दन की वृक्षावली, अनेक झीलें और ताल इस प्राकृतिक सुषमा को और भी बढ़ा देते हैं । यहां जंगली पशुओं के अभयारण्य भी हैं । बांदीपुर नागलेक, दंदेली के अभयारण्य

अति प्रसिद्ध हैं। श्रीरंगपट्टन के निकट पक्षी संरक्षण उद्यान भी सुन्दर है। पहाड़ी स्थानों में नान्दी तथा केम्मनगुंडी अच्छे स्थलों में से माने जाते हैं। कृष्ण सागर तट पर जग प्रसिद्ध वृन्दावन उद्यान, बंगलूर के लालबाग उद्यानों की छटा दर्शनीय है।

यहां पर शंकर, रामानुज तथा माध्व आचार्य हुए। श्री बसवेश्वर जैसे महान समाज सुधारक, भास्कराचार्य जैसे गणितज्ञ, कित्तूर चेन्नम्मा तथा टीपू सुल्तान जसे स्वतन्त्रता सेनानी यहां हुए। पुरन्दरदास एवं कनकदास जसे सन्त कवियों की जन्मभूमि भी यही हैं। पम्प, हरिहर तथा कुमार व्यास जैसे महान लेखक भी यहीं जन्मे।

जैनों की संसार प्रसिद्ध गोमटेश्वर की मूर्ति भी यहां श्रवण-बेलगोल में है। भारत के सुप्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक जैन साधु विशाखाचार्य के रूप में जीवन के अन्तिम दिन यहीं चन्द्रगिरि पर्वत पर व्यतीत किए थे।

हिन्दू, जैन, मुस्लिम तथा ईसाई सभी धर्मावलम्बियों ने कर्नाटक को अपनी आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक देन दी है।

यहां पर कुछ प्रमुख स्थानों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है :—

बेंगलूर

सागर तल से तीन हजार फुट की ऊंचाई पर बसा बंगलूर नगर कन्नड़ भाषी राज्य कर्नाटक की राजधानी है। समस्त देश में ऐसे सुन्दर जलवायु की राजधानी और किसी प्रदेश की नहीं है। प्रकृति की इस पर बड़ी कृपा हुई है। मौसम ऐसा रहता है कि न अधिक गर्मी, न अधिक सर्दी और धूल आंधियां भी नहीं उड़ती। नतीजा यह है कि फुल-फुलवारी और उद्यान अपने प्राकृतिक रंगों में बड़े सुन्दर

सजे-सजाये लगते हैं। राज्य की राजधानी होने के कारण यहां सुन्दर भवन तो हैं ही, बड़े अच्छे बाग और उद्यान भी हैं। यहां के विशाल जैन मन्दिरों में कई प्राचीन प्रतिमाएं हैं। रेलवे स्टेशन से तीन फलांग पर चिक्कपेट में एक विशाल धर्मशाला है। यहां कार तो जाती है, पर बस नहीं जा सकती।

नगर का सबसे सुन्दर स्थान वनस्पति उद्यान है। इसे लालबाग कहते हैं। हैदरअली, टीपू और उनके वंशजों ने १८वीं शताब्दी में इस बाग का निर्माण किया था। कई हैक्टर भूमि में यह बाग फैला हुआ है। इसमें झील, तालाब, मृगदाव तथा शताब्दियों पुराने पेड़ और अनेक प्रकार के पेड़-पौधे हैं। कमल तालाब अत्यन्त सुन्दर है। उद्यान के बीच में शीशमहल बहुत सुन्दर है। यहां पर वर्ष में दो बार प्रदर्शनी लगती है।

कब्बन पार्क, महाराजा के महल, विधान सौध जिसमें राज्य की विधान सभा और सचिवालय है, बड़े सुन्दर बाजार आदि यहां बने हैं। केम्पगौड़ा का कच्चा दुर्ग १६वीं शताब्दी का है। दो शताब्दी बाद हैदरअली और टीपू सुल्तान ने उसका पुनरुद्धार किया था। यहां पर नान्दी (बसव) मन्दिर तथा गंगा धारेश्वर मन्दिर बहुत सुन्दर है।

नान्दी पर्वतमाला

बंगलूर से ३८ मील दूर सड़क और रेल दोनों से नान्दी पर्वत-माला पर जाया जा सकता है। सड़क पहाड़ी के ऊपर तक चली गई है। यह स्थान समुद्र तल से ४८५० फुट की ऊंचाई पर है। यहां पर बहुत सुन्दर बंगले बने हैं। ठहरने की अन्य व्यवस्थाएं भी हैं। शाका-हारी भोजन की भी अच्छी व्यवस्था है। गर्मियों में अकसर लोग यहां ठहरने के लिए आते हैं।

कोलार स्वर्ण खदान

बंगलूर से ६० मील दूर भारत की एक मात्र स्वर्ण खदानें है, जिनका नाम है कोलार स्वर्ण खदानें। यहां सड़क और रेल दोनों मार्गों से पहुंचा जा सकता है। खुदाई होते-होते ये खानें आठ हजार फुट की नीचाई तक पहुंच गई हैं। ये संसार में सबसे गहरी स्वर्ण खदानें हैं। 'चम्पियन रीफ गोल्ड मायन' की गहराई ६,६५० फुट है। इन खानों को देखने के लिए भारत गोल्ड मायनिंग अन्डरटेकिंग के सचिव की अनुमति आवश्यक है।

मैसूर

कर्नाटक राज्य का यह प्रमुख नगर है। यह भूतपूर्व देशी राज्य मैसूर की राजधानी थी। नगर के बीच में दोड्ड पेट्ट में घंटाघर के समीप जैन धर्मशाला है। उसके ऊपर एक सुन्दर जैन-मन्दिर है। एक और मन्दिर राज भवन के पास चन्द्रगुप्त रोड पर है। चामुण्डेश्वरी का मन्दिर, नान्दी की विशाल मूर्ति, चिड़ियाघर, राज भवन तथा ललित महल यहां के दर्शनीय स्थल हैं। एक दन्त कथा कही जाती है—भूतपूर्व महाराजा मैसूर ने जैन मन्दिर को राज महल के परकोटे से बाहर कर दिया। उसके कुछ ही समय बाद सुन्दर लकड़ी से बने राज भवन में अग्निकांड हो गया। तदन्तर महाराजा इस मन्दिर के दर्शनार्थ फिर से आने लगे। यहां चन्दन की लकड़ी मलयगिरि जंगल में बहुतायात से मिलती है। उससे चन्दन का तेल भी निकाला जाता है। मैसूरी और बंगलोरी रेशम के कारखाने भी यहां हैं। यहां का दशहरा जगत प्रसिद्ध है।

चामुण्डी पहाड़ी, केन्द्रीय खाद टेक्नोलोजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट कावेरी, एक्वेरियम, कलादीर्घा तथा यहां के अन्य उद्यान अत्यन्त सुन्दर

हैं। इसलिए मैसूर नगर को भारत का उद्यान नगर कहा जाता है। यहां पर ठहरने की अच्छी व्यवस्था भी है।

कंदल

बंगलूर से ४० मील दूर तुमकुर जिले में कदल नगर है। यह इसलिए उल्लेखनीय है कि होयसल महाराजाओं के समय महान शिल्पी जाकनचारी की यह जन्म भूमि है। श्री चन्नकेशव का प्रसिद्ध मन्दिर भी यहां है। इसका निर्माण १२वीं शताब्दी में हुआ था। यहां पर ठहरने की उचित व्यवस्था है।

मेलकोटे

मैसूर नगर से ४० मील दूर एक और प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है मेलकोटे। यहां पर श्री वैष्णव संत रामानुजाचार्य कई वर्ष तक ठहरे थे। द्रविड़ शिल्प के सुन्दर नमूनों के यहां पर कई मन्दिर हैं। इनका निर्माण १८वीं तथा १६वीं शताब्दी में हुआ। यहां ठहरने के लिए धर्मशाला भी है।

मंगलूर

मूडबिद्री से २० मील दूर कर्नाटक का मशहूर नगर मंगलूर है। यह नगर सुन्दर और दर्शनीय है। यहां पर कई मन्दिर भी हैं जो दक्षिण शैली के सुन्दर नमूने हैं। यहां पर अब नया बन्दरगाह भी बनाया गया है। 'जनता एक्सप्रेस' रेल यहां से सीधे दिल्ली को आती जाती है।

शृंगेरी

तुंगभद्रा नदी के वाम तट पर चिक्कमंगलूर जिले में कोप्पा से

१५ मील दक्षिण पूर्व में धार्मिक केन्द्र शृंगेरी है। जगत प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य का यह स्थान है। उनका शृंगेरी मठ भी यहां मौजूद है। अद्वैत दर्शन का इसे घर कहा जाता है। यहां पर धर्मशालाएं मौजूद हैं जहां सुविधा से ठहरा जा सकता है।

बेलगांव

कर्नाटक राज्य के उत्तर में बेलगांव दर्शनीय नगर है। १२वीं और १३वीं शताब्दी में सौदत्ती के सरदार रत्तों ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। यहां पर एक दुर्ग है जो सुन्दर है।

कित्तूर

बेलगांव से २५ मील दूर ऐतिहासिक नगर कित्तूर है। देश में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता की सबसे बड़ी विद्रोहिणी रानी चेन्नमा का यही स्थान है। १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से ३० वर्ष पूर्व १८२७ में रानी चेन्नम्मा ने विद्रोह का बिगुल यहीं से बजाया था और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में दक्षिण भारत की ओर से पहली आहुति उन्होंने ही दी थी। खेद की बात है कि उत्तर भारत में रानी चेन्नम्मा का नाम तक नहीं जानते। यत्न होना चाहिए कि भारत का इतिहास ठीक से लिखा जाय।

गोल गुम्बद

बीजापुर नगर और गोल गुम्बद मुस्लिम काल की ऐतिहासिक यादें हैं। गोल गुम्बद संसार में सबसे बड़ा गुम्बद है। यह १८ हजार वर्ग फुट यानी १६७२·२ वर्ग मीटर क्षेत्रफल में है। यह शिल्प कला का बहुत सुन्दर नमूना है। यहां की फुसफुसाती दीर्घा प्रसिद्ध है। यहां

थोड़ी-सी कोई भी बात फुसफुसाये या कहे तो वह एक के बाद एक ११ बार लौटकर आती है। यहां नादिरशाह (द्वितीय) का इब्राहीम रोजा बड़ी कलापूर्ण इमारत है। यहां पर ठहरने की अच्छी व्यवस्था है।

बीदर

बहमनी राज्य का बोलवाला १७वीं शताब्दी तक था। बाद में मुगल सम्राट औरंगजेब ने इसे जीतकर इसकी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी। बीदर नगर बहमनी सुल्तानों की राजधानी था। यहां पर पुराने और नये किले देखने योग्य हैं। जिसे नया किला कहा जाता है, उसका निर्माण १४वीं शताब्दी में हुआ था। किले के अन्दर रंगीन महल, चीनी महल और टर्किश महल बड़े सुन्दर राज-महल हैं। बीदर का धातु पर हाथ का काम बड़ा ही प्रसिद्ध है। शरबासवेश्वर का यहां का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है।

विजयनगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी भी बहुत सुन्दर है। यहां पर कुछ प्राचीन मन्दिर तो बहुत ही सुन्दर हैं। यहां के विट्ठल, पम्पापति और हजारा राम मंदिर सबसे बड़े मन्दिरों में हैं। लक्ष्मी, नरसिंह की मूर्ति भी बहुत ही सुन्दर है।

महामस्तकाभिषेक

चामुण्डराय के समय गोम्मटेश्वर की मूर्ति के निर्माण के बाद जब प्रथम बार मस्तकाभिषेक किया गया था तो वह गुल्लिकायज्जी की छोटी-सी घण्टी के दूध से पूर्ण हुआ था। तभी से हर १२ वर्ष बाद महामस्तकाभिषेक करने की पद्धति आज तक चली आ रही है। इस अभिषेक में भगवान की मूर्ति पर १००८ जल कलश तथा नारियल, पंच वस्तुओं का समूह—केला, गुड़, घी, शक्कर, बादाम, छुहारे, दूध, दही, चन्दन, सोने के फूल, चांदी के फूल, रुपये तथा नवरत्न आदि चढ़ाये जाते हैं।

महामस्तकाभिषेक की तिथि पहले से ही निश्चित की जाती है। वह पर्व का दिन होने के कारण देश और विदेश के लाखों जैन और जैनेतर आबाल वृद्ध नर-नारी यहां एकत्र होते हैं। अभिषेक के दिन तक दूर-दूर से यात्री आते रहते हैं। एक महीना पहले ही यहां के सभी मन्दिरों में प्रतिदिन विशेष पूजा आराधना होने लगती है। भगवान बाहुबली की मूर्ति की महापाद पूजा भी होती है। महामस्तकाभिषेक का दिन विचित्र सरगर्मियों का दिन होता है। सूर्योदय से पहले ही भक्त जन पहाड़ी पर चढ़ने लगते हैं। दिन के १० बजते-बजते मन्दिर का सारा प्रांगण यात्रियों से खचाखच भर जाता है। मूर्ति के सामने की

लगभग ४० फुट भूमि पर नये धान बिछाये जाते हैं और उस पर मंत्र पूत १००८ मिट्टी के जल से भरे कलश आम्र पत्तों से वेष्टित नारियलों के साथ रखे जाते हैं। मूर्ति के चारों ओर विशाल ऊंचा मचान बनाया जाता है। उस पर अर्चक लोग जल, दूध, दही, घी आदि से भरे घड़े हाथों में लिये खड़े रहते हैं। इस पूजा का संचालन यहां के भट्टारक स्वामी करते हैं। उनका आदेश मिलते ही घड़ों और पंचद्रव्यों को मूर्ति के मस्तक से उंडेल दिया जाता है। यह है पूर्णाभिषेक की विधि। आगे महामस्तकाभिषेक दोपहर के बाद शुरू होता है। वाद्य घोषों के साथ जल भरे १००८ घड़े मूर्ति पर बड़ी स्फूर्ति के साथ उडेल दिये जाते हैं। पुजारी मंत्रोच्चारण करते हैं और यात्री भक्ति भाव में डूब जय जयकार करते सुनायी पड़ते हैं। 'भगवान बाहुबली की जय' 'गोमटेश्वर की जय', आदि जयघोषों से दशों दिशाएं गूंज उठती हैं। अन्त में स्नान कर दूध, दही, चन्दन आदि द्रव्य सोने चांदी के फूल और नवरत्न भी मूर्ति पर चढ़ाये जाते हैं। इस प्रकार पूजा पूर्ण हो जाती है।

इतने थोड़े से शब्दों में पूजा की सामान्य विधि का वर्णन तो यहां पर दिया गया किन्तु नर नारियों का कलरव, गुम्बदनुमा पहाड़ी के चारों ओर लाखों व्यक्तियों का जमघट और भावोद्रेक में आये भक्त जनों का कीर्तन-नर्तन देखने की ही चीज है, लिखने की नहीं। वह एक ऐसा दृश्य होता है जो दर्शक को उस युग में खींच ले जाता है जब पहला महामस्तकाभिषेक गुल्लिकायज्जी ने किया था।

गोमटेश्वर की मूर्ति का माप

	फुट	इंच
१. चरण से कर्ण के अधोभाग तक	५०	००
२. कर्ण के अधोभाग से मस्तक तक	६	६
३. चरण की लम्बाई	९	०
४. कटि भाग की चौड़ाई	१०	०
५. कटि और टिहुनी से कर्ण तक	१७	०
६. बाहु मूल से कर्ण तक	७	०
७. चरण के अग्रभाग की चौड़ाई	४	६
८. चरण अगुष्ठ की चौड़ाई	२	९
९. पाद पृष्ठ के ऊपर आधी गोलाई	१०	०
१०. जंघा के ऊपरी आधी गोलाई	१०	०
११. नितम्ब से कर्ण तक	२४	६
१२. रीढ़ की अस्थि के अधोभाग से कर्ण तक	२०	०
१३. नाभि के नीचे उदर की चौड़ाई	१३	०
१४. वक्षस्थल की चौड़ाई	२६	००
१५. गर्दन के नीचे से कान तक	२	६
१६. तर्जनी अंगुली की लम्बाई	३	६
१७. बीच की अंगुली की लम्बाई	५	३

१८. अनामिका अंगुली की लम्बाई	४	७
१९. कनिष्ठका अंगुली की लम्बाई	२	८
२०. समस्त मूर्ति की कुल ऊंचाई	५७	००

इस माप से शरीर के विभिन्न अवयवों का गठन और यष्टि का परिमाण कितना होना चाहिए इससे अनुमान किया जा सकता है। इसी से प्रकट है कि यह माप एक स्वस्थ आदर्श यष्टि का माप है।

मूर्तिकार ने सम्भवतः इस दृष्टि से कि वह पूर्ण और सर्वज्ञ नहीं है, बांये हाथ की निर्देशिका अंगुली, दाहिने हाथ की निर्देशिका अंगुली से कुछ छोटी बनाई है, अन्यथा उनका समस्त शरीर, दोनों नेत्र, नाक, कान, हाथ, पैर पैरों की अंगुलिलां, हाथों की अंगुलियां सभी बराबर और एक जैसे हैं। शायद उस महान कलाकार को दुष्प्रकृति लोगों के दृष्टि-दोष की आशंका भी रही हो। तभी एक अंगुली छोटी कर दी। जो भी हो, मात्र अंगुली के अन्तर के सम्पूर्ण मूर्ति में कहीं भी कोई किसी प्रकार की कमी दिखाई नहीं देती।

वार्षिक मेला : रथयात्रा महोत्सव

भगवान बाहुबली की मूर्ति की प्रतिष्ठा चैत्रमास की पंचमी के दिन हुई थी। इसलिए हर साल यहां चैत्र शुक्ल पंचमी से रथोत्सव का मेला प्रारम्भ होता है और वैशाख कृष्ण द्वितीया तक विविध कार्य-कलापों के साथ बड़ी धूमधाम से सम्पन्न होता है। इस उत्सव की सम्पूर्ण व्यवस्था स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी करते हैं। उत्सव के दिनों में यहां आने वाले यात्रियों के लिए भोजन और आवास की समुचित व्यवस्था रहती है।

पंचमी के दिन जैनागम विधि विधान से 'ध्वजारोहण' कार्य सम्पन्न होता है। ध्वजारोहण के बाद चार दिन तक सर्पराज, घोड़ा, देवेन्द्र और ऐरावत के रथों पर भगवान की मूर्ति का उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव की विशेषता यह है कि इन चार दिनों की उत्सव मूर्ति की पालकी जैनेतर ही कन्धों पर चढ़ाते हैं। वे ऐसा किसी लोभ से नहीं करते, भक्ति-भाव के कारण करते हैं, क्योंकि उन्हें केवल नारियल का प्रसाद ही दिया जाता है।

उसके बाद पंचकल्याणक उत्सव होता है। उत्सव के छटवें दिन दशमी को गर्भावतरण-गर्भ कल्याणक होता है। सातवें दिन जन्म कल्याणक, आठवें दिन जन्माभिषेक कल्याणक और बाल-लीला महो-

त्सव, नौवें दिन साम्राज्य वैभव और दीक्षा कल्याणक, दसवें दिन केवल ज्ञान कल्याणोत्सव मनाया जाता है। उसी दिन धर्म सम्मेलन का भी आयोजन होता है, जिसमें बाहर से आमन्त्रित बड़े-बड़े विद्वान सम्मलित होते हैं। ग्यारहवें दिन जो कि पूर्णिमा को पड़ता है, प्रात: १० बजे से ही बड़े रथ का उत्सव प्रारम्भ हो जाता है। यह रथ भण्डार बस्ती (मन्दिर) की प्रदक्षिणा करता है। इसकी विशेषता यह है कि भण्डार मन्दिर की आधी प्रदक्षिणा तक जैन जनांग के लोग रथ खींचते हैं, शेष आधी प्रदक्षिणा के समय जैनेतर लोग रथ खींचते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उत्सव जैन और जैनेतर सभी समाज का है, किसी एक धर्म अथवा सम्प्रदाय का नहीं। इसमें सभी समान रूप से उत्सव की शोभा को बढ़ाते हैं।

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा के दिन भगवान बाहुबली की महापादाभिषेक पूजा होती है। इसमें १०८ जल कलशों का अभिषेक और दूध, दही, घी, चन्दन आदि का अभिषेक भी होता है। उस दिन हजारों की संख्या में जैन, जैनेतर जन भक्तिभाव से भगवान बाहुबली गोमटेश्वर के चरणों में इकट्ठे होते हैं और अपनी-अपनी भावांजलि के अनुसार पुण्य लाभ करते हैं। अन्तिम दिन वैशाख कृ णा द्वितीया को नगर के मध्य स्थित कल्याणी सरोवर में सुन्दर सजावट की जाती है। एक सजी हुई नौका में भगवान की उत्सवमूर्ति का जल विहारोत्सव होता है। ऐसा सुन्दर और आकर्षक दृश्य अन्य स्थानों पर देखने को नहीं मिलता है। इसी के दर्शनार्थ हजारों यात्री यहां पहुंचते हैं।

श्री बाहुबली जिन पूजा

पूजन प्रतिज्ञा:—

जीत भरत चक्रेश को—लिया परम वैराग्य।
उन श्री बाहुबलीश को—जजूं धार अनुराग ॥ १ ॥

ऊं ह्रीं श्री बाहुबलिजिन अत्र मम हृदये अवतर अवतर, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः मम सन्निहितो भव भव स्थापनम् ।

पूजाष्टक :—

जलमल धावन विख्यात, अन्तर्मल न हरे।
दो वह समता—जल नाथ! कर्म कलंक धुले।
श्री बाहुबली अति धीर-वीर तपस्विमहा,
जय गोम्मट ईश्वर देव, भवदधि पार लहा ॥ २ ॥

ऊं ह्रीं श्री बाहुबलिजिन चरणाग्रे जलं क्षिपामि।

चन्दन शीतल, पर नाहिं अन्तर्दाह हरे,
दो जिन अकषाय-स्वभाव, भव आताप टरे,
श्री बाहुबली अतिधीर वीर तपस्विमहा,
जय गोम्मट ईश्वर देव भवदधि पार लहा।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिन चरणाग्रे चन्दनं क्षिपामि ।

अक्षत सेवत दिनरात, अक्षय गुण न करें,
दो अक्ष रसायन देव ! अक्षय पद प्रगटे ।
श्री बाहुबली अति धीर-वीर तपस्विमहा,
जय गोम्मट ईश्वर देव भवदधि पार लहा ।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलि जिन चरणाग्रे अक्षतं क्षिपामि ।

प्रभु कुसुम शरों की मार, मन को व्यथित करें,
दो अनुभव शक्ति महान्, मन्मथ दूर भगे ।
श्री बाहुबली अतिधीर-वीर तपस्विमहा,
जय गोम्मट ईश्वर देव, भवदधि पार लहा ।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलि जिन चरणाग्रे पुष्पं क्षिपामि ।

नाना विधि खाद्यपदार्थ खाते हम हारे ।
नहिं क्षुधा हुई निर्मूल, आए तुम द्वारे ।
श्री बाहुबली अति धीर-वीर तपस्विमहा ।
जय गोम्मट ईश्वर देव भवदधि पार लहा ।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलि जिन चरणाग्रे नैवेद्यं क्षिपामि ।

दीपक तमहर सुप्रसिद्ध, अन्तर्तम न हरे,
मैं खोजूं आत्मस्वरूप, ज्ञान शिखा प्रगटे ।

श्री बाहुबली अतिधीर-वीर तपस्विमहा,
जय गोम्मट ईश्वर देव भवदधि पार लहा।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलि जिन चरणाग्रे दीपं क्षिपामि ।।

अग्नीन्धन धूप अनूप, नहिं निजकाज सरे,
कर्मेन्धन दाहन हेतु, योगानल प्रजरे।
श्री बाहुबलि अति धीर-वीर तपस्विमहा,
जय गोम्मटईश्वर देव भवदधि पार लहा।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलि जिन चरणाग्रे धूपं क्षिपामि।

फल पाये भोगे खूब, पर परतन्त्र रहे,
दो शिवफल हे शिवरूप निज स्वातन्त्र्य लहे।
श्री बाहुबली अति धीर-वीर तपस्विमहा,
जय गोम्मट ईश्वर देव भवदधि पार लहा।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलि जिन चरणाग्रे फलं क्षिपामि।

इन जल फलादि मे नाथ ! पूजत युग बीते।
नहीं हुए विमल युगवीर अब तुम ढिग आए।
श्री बाहुबली अति धीर-वीर तपस्वि महा,
जय गोम्मटईश्वर देव, भवदधि पार लहा।

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलि जिन चरणाग्रे अर्घं क्षिपामि।

अभिनन्दन जयमाल

ऋषभदेव के पुत्र, सुनन्दा के प्रियनन्दन ।
बाहुबली जिनराज, करें मिल सब अभिनन्दन ।।

हे नरवर ! अवतार लिया तुम पूज्य ठिकाने
अवसर्पिणि युग आदि, नाभिसुत वृषभ घराने ।
पाले पोषे गए, रहे सत् संस्कारों में,
आत्मज्ञानव्रत सदा रहे दृढ अधिकारों में ।। १ ।।

हे नृपवर तुम राजपाट, निज पितु से पाया,
तृषा रहित हो न्याय नीति से उसे चलाया ।
सबलों का ले पक्ष दुर्बलों को न सताया,
सर्व प्रजा का प्रेम प्राप्त कर यश उपजाया ।। २ ।।

पोदन-मण्डल भूमि तुम्हारी राज्य महीथी,
जहां प्रकृति श्री पूर्ण रूप से राज रही थी ।
भरत तुम्हारे ज्येष्ठ भ्रात थे, गुण अणियारे,
प्रवर अयोध्या राज्य रमा के भोगन हारे ।।३।।

उन्हें महत्वाकांक्षा ने घर आन दबाया,
छहों खण्ड को जीत राज्य का भाव समाया ।
चक्ररत्न ले हाथ विजय को निकल पड़े थे,
देश देश के नृपति भेंट ले पांव पड़े थे ॥४॥

जब वे कर दिग्विजय देश को लौट रहे थे,
सर्व प्रजा में आनद का रस घोल रहे थे ।
चक्र रत्न आ रुका, राजधानी के द्वारे,
कर नहि सका प्रवेश, यत्न कर बुधजन हारे ॥५॥

चिन्तातुर थे भरत, मंत्रियों ने बतलाया,
बाहुबली महाराज-राज नहीं हाथों आया ।
जब तक वे आधीन नहीं स्वीकार करेंगे,
चक्र सहित सुप्रवेश देश हम कर न सकेंगे ॥६॥

तभी भरत ने दूत हाथ सन्देश पठाया,
जो कर शीघ्र प्रयाण आपके सम्मुख आया ।
करो सभेट प्रणाम, शीघ्र या लड़ने आओ,
समर भूमि में स्वबल दिखा वैशिष्ट्य बताओ ॥७॥

सुनकर यह सन्देश आग सी तन में लागी,
स्वाभिमान को चोट लगी युद्धेच्छा जागी ।
फलत: दोनों ओर युद्ध के साज सजे थे,
योद्धागण सब भिड़ने को तय्यार खड़े थे ॥८॥

उसी समय आदेश सैनिकों ने यह पाया,
सुलह सन्धि का रूप अनोखा सम्मुख आया ।
सैनिक दल अब नहीं लड़ेंगें, नहीं कटेंगें,
दोनों भाई स्वयं आप नि:शस्त्र लड़ेंगें ॥९॥

दृष्टि-मल्ल-जल-युद्ध, इन्हें जो जीत सकेगा,
वही सकल साम्राज्य भूमि स्वाधीन करेगा ।
उद्घोषित सम्राट बनेगा वह ही जग में,
वही करेगा राज्य विश्व के इस प्रांगण में ॥१०॥

अहो वीरवर दृष्टि युद्ध जब सम्मुख आया,
तब तुमने नृपराज भरत को खूब छकाया ।
आखिर मानी हार, थकी जब उनकी ग्रीवा,
हुई सहायक तुम्हें तुम्हारी ऊंची काया ॥११॥

इसी तरह जल युद्ध-विजय को तुमने पाया,
जलक्षेपण में भरत राज को अन्त हराया ।
अपमानित थे भरत, लाज ने उन्हें सताया,
मल्लयुद्ध में विजय प्राप्ति का भाव बढ़ाया ॥१२॥

मल्ल युद्ध के लिए अखाड़ा खूब सजाया,
युद्ध देखने जन समूह सब उमड़ पड़ा था ।
चर्चा थी सब ओर, युद्ध श्री कौन वरेगा ?
कौन करेगा राज्य, मुकुट निज सीस धरेगा ॥१३॥

इसी बीच में युद्ध सामने सब के आया,
दांव-पेंच और युद्ध-कला का रंग दिखाया।
एक तरफ थे आप उधर भरतेश खड़े थे,
अपनी अपनी विजय प्राप्ति के लिए अड़े थे ॥१४॥

इतने ही में एक सपाटा तुमने मारा,
हाथों लिया उठाय भरत को कन्धे धारा।
पटक भूमि पर दिया नहीं, यह भाव विचारा,
आखिर तो है पूज्य पिता सम भ्रात हमारा ॥१५॥

उधर क्रोध भरतेश हृदय में पूरा छाया,
सह न सका अपमान घोर, सब न्याय भुलाया।
चक्र रत्न को याद किया वह कर में आया,
निर्दय होकर उसे आप पर तुरत चलाया ॥१६॥

हहाकार मच गया, चक्र नभ में गुर्राया,
शंकित थे सब हृदय सोच अनहोनी माया।
पर वह बनकर सौम्य तुम्हारे सम्मुख आया,
परिक्रमा दे तीन, तुम्हें निज सीस झुकाया ॥१७॥

निष्फल लौटा देखा, भरत दुःख पूर हुआ था,
उसका सारा गर्व आज चकचूर हुआ था।
होकर के असहाय पुकारा—'हारा भाई!'
तब तुम भूमि उतार उसे धिक्कार बताई ॥१८॥

विजय प्राप्ति पर भरत राज्य श्री सम्मुख धाई,
वरमाला ले तुम्हें शीघ्र वह वरने आई ।
पर तुमने हो निर्ममत्व दुतकार बताई,
जगलीला लख पूर्ण विरक्ति तुम पर छाई ।।१९।।

'वेश्यासम इस राज्य रमा को मैं नहिं भोगूं
अपना भी सब राजपाट मैं इस दम त्यागूं ।
पिता मार्ग पर चलूं, निजात्मा को आराधूं
नहीं किसी से रागद्वेष रख संयम साधूं ।।२०।।

ये थे तव उद्गार, जिन्हें सुन रोना आया,
भरत राज का निठुर हृदय भी था पिघलाया ।
निज करणी का ध्यान आन वह बहु पछताया,
गद्गद् होकर तुम्हें बहुत रोका समझाया ।।२१।।

पर तुम पर कुछ असर न था रोने धोने का
समझ लिया था मर्म विश्व कोने-कोने का ।
आत्म सुरस लौ लगी, और कुछ तुम्हें न भाया,
अनुनय विनय किसी का भी कुछ काम न आया ।।२२।।

अहो त्यागिवर ! त्याग चले सब जग की माया,
वस्त्राभूषण फेंक दिये, जल रस नहिं आया ।
निर्जन वन में पहुंच खड़े सत्ध्यान लगाया,
प्रकृति हुई सब मुग्ध देख तब निर्मम काया ।।२३।।

नहीं खास खंकार, नहीं कुछ खाना पीना
नहीं शयन मलमूत्र, नहीं कुछ नहाना धोना ।
नहीं बोल बतलाव, नहीं कहिं जाना आना,
खड़े अटल नासाग्र दृष्टिवर दिक्पट बाना ।।२४।।

बंबि बनाकर चरण पास में नाग बसे थे
क्रूरजन्तु आ पास क्रूरता भाव तजे थे ।
बेल लताएं इधर उधर से खिंच आई थीं,
अंगों में सब लिपट, खूब सुख सरसाई थीं ।।२५।।

तुम थे अन्तर्दृष्टि, देखते कर्म गणों को
योगानल में भस्म, विकसते स्वात्म गुणों को ।
इस ही में आनन्द मग्न थे, गुण अनुरागी,
बहि चिन्ता में मुक्त, मोह ममता के त्यागी ।।२६।।

हे योगीश्वर, योगसाधना देख तुम्हारी
चकित हुए सब देवि देवता औ नर नारी ।
एक वर्ष तुम खड़े रहे अविचल अविकारी,
भूख प्यास औ शीत घाम बाधा सब टारी ।।२७।।

योग कीर्ति भरतेश सुनी, तब दौड़े आए,
चरणों में पड़ सीस नमा तब गुण बहु गाए ।
उसी समय अशिष्ट मोह सब नष्ट हुआ था,
शेष घातिया कर्म पटल भी ध्वस्त हुआ था ।।२८।।

केवल रवि तब आत्म धाम में उदित हुआ था,
विश्व चराचर ज्ञान मुकुर में झलक रहा था ।
दर्शन सुख औ 'वीर्य शक्ति का पार नहीं था,
जीवन् मुक्त स्वरूप आप का प्रकट हुआ था ॥२९॥

लखकर यह सब दृश्य, देवगण पूजन आए,
हर्षित हो अति सुरभि पुष्प नभ से बरसाए ।
दुन्दुभि बाजे बजे शोर सुन सब जन धाए,
पूजा कर निज सीस नमाकर अति हर्षाए ॥३०॥

गन्ध कुटी तब रची गई देवों के द्वारा,
जिसमें बही अटूट भवद् वचनामृतधारा ।
पाकर आत्म विकास मार्ग को सब ने जाना,
जिनका था भव निकट योग व्रत उनने ठाना ॥३१॥

अन्त समय कैलास शिखर से निर्वृति पाई,
जहां पिता आदीश राजते थे सुखदाई ।
आवागमन विमुक्त हुए भवबाधा टाली,
शाश्वत सुख में मग्न हुए निज श्री सब पाली ॥३२॥

इस युग के हो प्रथम सिद्ध भगवान् हमारे,
ऋषभदेव से पूर्व परम शिवधाम पधारे ।
निजादर्श रख गए जगत के सम्मुख ऐसा,
बनें भव्य 'युगवीर' त्याग सब कौड़ी पैसा ॥३३॥

बाहुबली जिनराज को, जो ध्यावें धर ध्यान।
सब दुःख दंगल दूर कर, लहें परम कल्याण ॥

इति श्री जुगल किशोर मुख्तार युगवीर विरचिता।
श्री गोम्मटेश्वर बाहुबलिजिन-पूजा समाप्ता ॥

श्री गोमटेश्वर सुप्रभात

नाभेयादिजिनेश्वरात्मजवरः श्रीमन् सुनन्दात्मजः,
श्रीमत्पोदनपत्तन-प्रभुवरो भव्यात्मसंरक्षकः ।
यो देवेन्द्र-फणीन्द्र-पूजित-पदाम्भोजः समुक्तीश्वरः,
श्रीमद्गोमटतीर्थकृत् प्रसरतां मे सुप्रभातोत्मवः ॥१॥

पापान्धकार-दिननाथ दया-समुद्र—
नामीश-सन्मनुवर-प्रियकार-पुत्र ।
जन्माब्धि-पारगत मुक्ति-रमा पवित्र
श्रीगोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥२॥

राश्रीशतेजस हितामलपदानेत्र,
सर्वाचलाधिरमणं भरतं सुनेत्र ।
मल्लाम्बुयुद्धजयतो चिजत् पवित्र
श्रीगोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥३॥

दुष्टादुष्ट कर्म गजमर्दन पंचवक्त्र,
सत्पंचबोधनमहासुविशुद्ध नेत्र ।
योगीन्द्र वृन्दविनुताऽर्हमुक्तिपात्र,
श्री गोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥४॥

अम्भोजनेत्रहरितोरुविकाश मात्र,
भव्याम्बुजात सुविशुद्ध विनेय मित्र ।
तीर्थादिनाथ वृषभादिपते: सुपुत्र
श्री गोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥५॥

युद्धत्रयेषुजयशीलगतो पिसार,
वैराग्यभावजिनदीक्षत मेरुधीर।
मुक्त्यगांनाप्रियकरामल सौख्यपूर,
श्री गोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥६॥

तुंगोत्तमांग गणनार्थ सहस्रमान,
हातद्वयं मुकुलितामर पूज्यमान ।
मोक्षश्रियासुखपते भरताभिमान,
श्री गोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥७॥

श्री दोबलीश भुवनैक पितामहाधि—
क्रोधादिदुष्ट परिणाम जय प्रबोध ।
त्रैलोक्यनाथ परिपूजित दिव्यपाद,
श्री गोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥८॥

चामुण्डराय परिपुजितपादप दा,
तन्मारवीर रिपुनाशन कर भीम ।
सोमार्क कोटि ममतेज सुधाभिराम !
श्री गोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥९॥

श्री बेलगुलाद्रि शिखरे सुविराजमान
शोभायमान तव बिम्ब सुदर्शनेन
सद्भक्तितो विनमितां शिव सौख्यपूर्ण
श्री गोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥१०॥

इक्ष्वाकुवंश जलधे: परिपूर्णचन्द्र,
भक्त्या नमामि तवपादयुगं जिनेन्द्र ।
मोक्षांगनावरपते त्रिजगन्महेन्द्र,
श्री गोमटेश्वर विभो मम सुप्रभातम् ॥११॥

श्री सुरासुरोरगेन्द्र मस्तकानतेश्वर,
क्लेश मोहरागदुष्ट हस्ति संघ केसरी ।
त्वां सुमुक्ति कांक्षितो ह्मानतो जिनेश्वर,
शाश्वतं ससुप्रभातमस्तु मे महेश्वर ॥१२॥

श्री गोमटेश्वर शमाष्टनामावली–

श्री वत्सादिमहालक्ष्मल क्षितोत्तुंगविग्रहम् ।
नाम्नामष्टशतेनाहं स्तोष्ये श्री गोमटेश्वरम् ।।

१. ऊं ह्रीं श्रीमते नम:
२. ऊं ह्रीं बाहुबलिने नम:
३. ऊं ह्रीं नाभिनप्त्रे नम:
४. ऊं ह्रीं नाभेयनन्दनाय नम:
५. ऊं ह्रीं सौनन्देयाय नम:
६. ऊं ह्रीं सुरम्येशाय नम:
७. ऊं ह्रीं पौदनापत्तनेश्वराय नम:
८. ऊं ह्रीं सर्वातिशय-साम्राज्याय नम:
९. ऊं ह्रीं राजचूडामणये नम:
१०. ऊं ह्रीं विभवे नम:
११. ऊं ह्रीं समवृत्तशिरसे नम:
१२. ऊं ह्रीं चारुललाटाय नम:
१३. ऊं ह्रीं दीर्घलोचनाय नम:
१४. ऊं ह्रीं अंसावलम्बिश्रवणाय नम:

१५. ॐ ह्रीं भास्वदभ्युगसद्भ्रनुषे नमः
१६. ॐ ह्रीं ईषत्पोनहृनवे नमः
१७. ॐ ह्रीं चारुगण्डाय नमः
१८. ॐ ह्रीं चम्पकनासिकाय नमः
१९. ॐ ह्रीं राकानिशाकरमुखाय नमः
२०. ॐ ह्रीं कुटिलायतकुन्तलाय नमः
२१. ॐ ह्रीं कम्बुग्रीवाय नमः
२२. ॐ ह्रीं गूढनेत्रवे नमः
२३. ॐ ह्रीं सिहृम्कन्ध विभासुराय नमः
२४. ॐ ह्रीं अजानुबाहृवे नमः
२५. ॐ ह्रीं उत्तुंगपीनवक्षसे नमः
२६. ॐ ह्रीं महाकराय नमः
२७. ॐ ह्रीं कण्ठीग्व कटये नमः
२८. ॐ ह्रीं निम्ननाभये नमः
२९. ॐ ह्रीं पृथुनितम्बाय नमः
३०. ॐ ह्रीं बज्रमारसमानोरत्रे नमः
३१. ॐ ह्रीं दृढजंघाय नमः
३२. ॐ ह्रीं समक्रमाय नमः
३३. ॐ ह्रीं महातेजसे नमः
३४. ॐ ह्रीं महोदग्रविग्रहाय नमः
३५. ॐ ह्रीं प्रियदर्शनाय नमः
३६. ॐ ह्रीं समाय नमः
३७. ॐ ह्रीं समानावयवाय नमः
३८. ॐ ह्रीं धर्मज्ञाय नमः
३९. ॐ ह्रीं शुभलक्षणाय नमः

४०. ॐ ह्रीं कामदेवाय नमः
४१. ॐ ह्रीं महावीर्याय नमः
४२. ॐ ह्रीं सार्वभौमप्रतापजिते नमः
४३. ॐ ह्रीं भूपाध्यक्षाय नमः
४४. ॐ ह्रीं महाभागाय नमः
४५. ॐ ह्रीं युद्धत्रय विशारदाय नमः
४६. ॐ ह्रीं अजव जव सारक्षाय नमः
४७. ॐ ह्रीं वीतरागाय नमः
४८. ॐ ह्रीं महातपसे नमः
४९. ॐ ह्रीं शक्रमूर्धोदयलसत्कायोत्सर्गाय नमः
५०. ॐ ह्रीं महाधृतये नमः
५१. ॐ ह्रीं तपःक्षुभितनाकेशाय नमः
५२. ॐ ह्रीं लब्धेर्धये नमः
५३. ॐ ह्रीं अघभंजनाय नमः
५४. ॐ ह्रीं सुरेशप्रास्रपुजार्धये नमः
५५. ॐ ह्रीं कल्याण गुणमण्डिताय नमः
५६. ॐ ह्रीं माधविवल्लरिविभाजद् दिव्यमंगल विग्रहाय नमः
५७. ॐ ह्रीं केवलार्कोदयाचिन्त्यमहिम्ने नमः
५८. ॐ ह्रीं अतीन्द्रियार्थदृशे नमः
५९. ॐ ह्रीं निरम्बराय नमः
६०. ॐ ह्रीं निराहराय नमः
६१. ॐ ह्रीं निराभरण सुन्दराय नमः
६२. ॐ ह्रीं अनिर्देश्यांग सुपमाय नमः
६३. ॐ ह्रीं भ्राजिष्णवे नमः
६४. ॐ ह्रीं भुवनोत्तमाय नमः

६५. ॐ ह्रीं नियतात्मने नमः
६६. ॐ ह्रीं प्रसन्नात्मजे नमः
६७. ॐ ह्रीं सर्वज्ञाय नमः
६८. ॐ ह्रीं सर्वदर्शनाय नमः
६९. ॐ ह्रीं भव्यलोक परित्रात्रे नमः
७०. ॐ ह्रीं मोहाडम्बर खण्डनाय नमः
७१. ॐ ह्रीं महायोगिने नमः
७२. ॐ ह्रीं महारुपाय नमः
७३. ॐ ह्रीं पापपांशुविधूननाय नमः
७४. ॐ ह्रीं चिदानन्दमयाय नमः
७५. ॐ ह्रीं सार्वाय नमः
७६. ॐ ह्रीं शरणगतरक्षकाय नमः
७७. ॐ ह्रीं परंज्योतिषे नमः
७८. ॐ ह्रीं परन्धाम्ने नमः
७९. ॐ ह्रीं परमेष्टिने नमः
८०. ॐ ह्रीं परात्पराय नमः
८१. ॐ ह्रीं धर्मात्मने नमः
८२. ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः
८३. ॐ ह्रीं धर्मपीयूषवर्षणाय नमः
८४. ॐ ह्रीं स्वयंभुवे नमः
८५. ॐ ह्रीं शाश्वताय नमः
८६. ॐ ह्रीं शान्ताय नमः
८७. ॐ ह्रीं सूरिस्वप्न फल प्रदाय नमः
८८. ॐ ह्रीं निरंजनाय नमः
८९. ॐ ह्रीं निर्विकाराय नमः

९०. ॐ ह्रीं प्रेक्षक प्रीतिवर्धनाय नमः
९१. ॐ ह्रीं ज्योतिमूर्तये नमः
९२. ॐ ह्रीं गभीरात्मने नमः
९३. ॐ ह्रीं कल्याय नमः
९४. ॐ ह्रीं अणीयसे नमः
९५. ॐ ह्रीं अच्युताय नमः
९६. ॐ ह्रीं शुभगुणोज्वलाय नमः
९७. ॐ ह्रीं नेत्रे नमः
९८. ॐ ह्रीं महीयसे नमः
९९. ॐ ह्रीं बोध सर्वगाय नमः
१००. ॐ ह्रीं मोक्षलक्ष्मीपतये नमः
१०१. ॐ ह्रीं देवदेवाय नमः
१०२. ॐ ह्रीं सर्वमुनीडिताय नमः
१०३. ॐ ह्रीं निरजसे नमः
१०४. ॐ ह्रीं निर्मलाय नमः
१०५. ॐ ह्रीं सौम्याय नमः
१०६. ॐ ह्रीं स्वभाव महिमोदयाय नमः
१०७. ॐ ह्रीं श्री जैनमहिमा साक्षिणे नमः
१०८. ॐ ह्रीं विन्ध्यशैलशिखामणये नमः

विधि—प्रत्येक मन्त्र के साथ सफेद फूल और केशर मिश्रित अक्षत चढ़ाने चाहिए ।

इमां नामावलीं पुण्यों जिष्णोः श्री गोमटेशिनः।
श्रृद्धया पठतेयस्तु स स्यात् केवल वोधभाक् ॥
आयुरारोग्यसौभाग्यभोज स्तेजोमहाद्यशः।
अनेकर्चति यः शुद्धया श्रियंप्राप्नोत्यनश्वरीम् ॥
परब्रह्मात्मजं देवं नरोरत्रामुनीडितम्।
परात्परं परतरं भजे श्री गोमटेश्वरम् ॥१॥
विशालाक्षं महोरस्कं स्मितास्यं सुन्दराकृतिम्।
विपुलां संमहीयांसं भजे श्री गोमटेश्वरम् ॥२॥
आसेचनकरूपाभि रामं संसार तारकम्।
कैवल्यकामिनी कान्तं भजे श्रीगोमटेश्वरम् ॥३॥
चिदानन्दमहाकायं सर्वतीर्थमयं जिनम्।
त्रिलोकेशं त्रिकालेशं भजे गोमटेश्वरम् ॥४॥
मोक्षलक्ष्मी कटाक्षेद्धं वक्षसम्भूरितेजसम्।
विनाशितजनायासं भजे श्री गोमटेश्वरम् ॥५॥
अनाद्यिनिद्यनं सिद्धं शुद्धानन्द वरप्रदम्।
जन्ममृत्युजरातीतं भजे श्री गोमटेश्वरम् ॥६॥
दातारं सर्वविद्यानां भूर्मुवः स्वः सुखप्रदम्।
भवरोग महावैद्य भजे श्री गोमटेश्वरम् ॥७॥
निरायुधं निर्विकारं निरालंकार बन्धुरम्।
निरम्बरं विनेत्तारं भजे श्री गोमटेश्वरम् ॥८॥
गोमटेशाष्टकमिदं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्।
योहि त्रिशुद्धया पठते श्रेयसं सुखमाप्नुयात् ॥९॥
धर्म्यमर्थं यशस्यं च गोमटेशाष्टकं पठन्।
लबध्वा परतरं ब्रह्म मूरिभूंरिसुखोभवेत् ॥१० ॥